UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178264

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H291 CA9D Accession No. P. G. H990

Author चतुरसेन .

Title धर्म के नामपर . 1949.

This book should be returned on or before the date last marked below.

विषय-सूची

१—धर्म क्या है ?	१
२—सदुपयोग और दुरुपयोग	१५
—अन्धविश्वास और कुसंस्कार	३४
४—अत्याचार	५०
५—हत्या	६९
६—व्यभिचार ?	८३
७—अपराध	९६
८—कुरीति और रूढ़ियाँ	१०५
९—पाखंड	१३५
१०—धर्म-नीति	१५६
११—धर्मादा खाता	१६१
१२—ऋषि दयानन्द और उनका कार्य	१६५
१३—हमारा सड़ा गला वर्णाश्रम धर्म	१८४
१४—जहरीली छुरी	२००

ग्रन्थकार का निवेदन

इस पुस्तक को पढ़कर मेरे बहुत से मित्र और बुजुर्ग मुझ पर हद दर्जे तक नाराज होंगे। सम्भव है कि मुझे उनकी मित्रता से भी हाथ धोना पड़े, क्योंकि उनमें से बहुतों की आजीविका पीढ़ियों से इस पुस्तक में वर्णित पाखण्डों के द्वारा ही चल रही है। मैं यह सत्य कहता हूँ कि पुस्तक न तो किसी व्यक्ति को लक्ष्य करके लिखी गई है और न इसे लिखकर मैं किसी भी मित्र या अमित्र का अमंगल किया चाहता हूँ। इस पुस्तक को लिखने का मेरा उद्देश्य सिर्फ यही है, कि मेरे देश के नवयुवकों के दिमाग इस पाखंडमूर्ण धर्म से आजाद हो जायं, और वह स्वतंत्रतापूर्वक जैसे अपने सुसंस्कृत और सुशिक्षित मस्तिष्क से अपने भले बुरे और बहुत सी बातें सोचते हैं, इस विषय पर भी सोचें। क्योंकि मेरी राय में हिन्दुओं की भविष्य नस्ल को—जो इन नवयुवकों की सन्तति होगी, मर्द बच्चा बनाने का एकमात्र यही उपाय है, और मैंने यह राय संसार की महान जातियों के नाश के इतिहासों का गम्भीरतापूर्वक मनन करके ही कायम की है,

इस लिये मेरे जिन भाइयों का दिल इस पुस्तक को पढ़ कर दुखे, उनके चरणों में शीश नवा कर मैं प्रथम ही क्षमा माँगे लेता हूँ। क्योंकि इन पाखंडों के बीच में जीवित रह कर मुझे उनसे कहीं अति अधिक दुःख हो रहा है।

चतुरसेन

दूसरा संस्करण

मुझे यह देख कर हर्ष हुआ कि मेरी इस पुस्तक को लोगों ने चाव से पढ़ा और इसका इतनी शीघ्र दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। इस संस्करण में पुस्तक को जहाँ तहाँ परिमार्जित कर दिया गया है। आशा है, पाठकगण लाखों की संख्या में इस पुस्तक से लाभ उठावेंगे, और अधिक से अधिक इसका प्रचार करेंगे।

तीसरा संस्करण

पुस्तक का यह तीसरा संस्करण इस बात का प्रमाण है कि लोग इस धर्म के लिये जो अधर्म है, चिन्तन कर रहे हैं, और वे सच्चे मानव-धर्म की तलाश में हैं। मैं आशा करता हूं कि पाठक इस पुस्तक को पढ़ कर ही न रह जायँ बल्कि इस मूढ़ धर्म को निर्मूल करने में क्रियात्मक भाग लें, जिसका अब समय आ चुका है।

आठवां संस्करण

इस पुस्तक का यह आठवाँ संशोधित संस्करण है। मुझे प्रसन्नता है कि लोग इस पुस्तक में वर्णित विषय पर इतनी रुचि रखते हैं। मैं अपने पूर्व वक्तव्य को इस बार भी दुहराता हूँ और निवेदन करता हूं कि वे अधिक से अधिक इस पुस्तक की चर्चा अपने मित्रों में करें और उन्हें इसे पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

ज्ञानधाम
देहली-शाहदरा
२-८-४६

चतुरसेन

(१)

धर्म क्या है

धर्म ने हज़ारों वर्ष से मनुष्य जाति को नाकों चने चबाए हैं। करोड़ों नर नाहरों का गर्म रक्त इसने पिया है, हजारों कुल-बालाओं को इसने जिन्दा भस्म किया है, असंख्य पुरुषों को इसने जिन्दा मुर्दा बना दिया है। यह धर्म पृथ्वी की मानव जाति का नाश करेगा कि उद्धार—आज इस बात पर विचार करने का समय आ गया है।

धर्म के कारण ही धर्म के पुत्र युधिष्ठर ने जुआ खेला, राज्य हारा, भाइयों और स्त्री को दाव पर लगा कर गुलाम बनाया। धर्म ही के कारण द्रोपदी को पाँच आदमियों की पत्नी बनना पड़ा। धर्म ही के कारण अर्जुन और भीम के सामने द्रोपदी पर अत्याचार किये गये और वे योद्धा मुर्दे की भाँति बैठे देखते रहे। धर्म ही के कारण भीष्म पितामह और गुरु द्रोण ने पांडवों के साथ कौरवों के पक्ष में युद्ध किया। धर्म ही के कारण अर्जुन ने भाइयों और सम्बन्धियों के खून से धरती को रंगा। धर्म ही के

कारण भीष्म आजन्म कुंवारे रहे। धर्म ही के कारण कुरुओं की पत्नियों ने पति से भिन्न पुरुषों से सहवास करके सन्तान उत्पन्न कीं।

धर्म ही के कारण राम ने राज्य त्याग बनोवास लिया। धर्म ही के कारण दशरथ ने राम को बनवास दिया। धर्म ही के कारण राम ने सीता को त्यागा, शूद्र तपस्वी को मारा और बिभीषण को राज्य दिया।

धर्म के कारण राजा हरिश्चन्द्र राज-पाट छोड़ भंगी के नौकर हुए। धर्म ही के कारण बलि ठगे गये। धर्म ही के कारण कर्ण को अपने कुंडल और कवच देने पड़े।

धर्म के कारण राजपूतों ने अपने सिर कटाये, उनकी स्त्रियों ने अपने स्वर्ण शरीर भस्म किये, रक्त की नदियाँ बहीं। धर्म ही के कारण शंकर और कुमारिल ने, दयानंद और चैतन्य ने, कठोर जीवन व्यतीत किए।

आज धर्म के लिये हमारे घरों में तीन करोड़ विधवायें चुपचाप आँसू पीकर जी रही हैं। करोड़ अछूत कीड़े मकोड़े बने हुए हैं। धर्म ही के कारण पाखंडी, घमंडी और गर्वगंड ब्राह्मण भी सर्वश्रेष्ठ बने हुए हैं। धर्म ही के कारण भद्दी और बेहूदी अश्लील मूर्तियाँ तक पूजनीय बनी हुई हैं। धर्म ही के कारण पत्थर को परमेश्वर कहने वाले पेशेवर गुनहगार पुजारी लाखों स्त्री-पुरुषों से पैरों को पुजाते हैं। धर्म ही के कारण भंगी प्रातः काल होते ही अपनी बहू-बेटियों सहित औरों का मल-मूत्र

सिर पर ढोता है। धर्म ही के कारण आज हिंदू, मुसलमान और इसाई एक-दूसरे के जानी दुश्मन बने हुए हैं।

धर्म के कारण ही सिक्खों ने मुगल काल में अंग कटवाये, बच्चों को दीवार में चुनवाया। धर्म ही के कारण रोमन-कैथोलिकों के भीषण अत्याचार की भेंट लाखों ईसाई हुए। धर्म ही के कारण नीरो ने ईसाइयों को मसाल की भाँति जलवाया। धर्म ही के कारण मुसलमानों ने पृथ्वी भर को रौंद डाला और मनुष्य के गर्म खून में तलवार रंगी। धर्म के ही लिए ईसाइयों ने प्राण का विसर्जन किया।

आज धर्म के लिए सिपाही युद्ध-क्षेत्र में सन्मुख के मनुष्यों को मारता है। धर्म ही के कारण वेश्याएँ अपनी अस्मत बेचती हैं। धर्म ही के कारण कसाई पशु-वध करता है। धर्म ही के कारण जीव-हत्या करके मन्दिरों में बलि दी जाती है।

मैं जानना चाहता हूँ कि सारी पृथ्वी में हज़ारों वर्ष से ऐसे उत्पात मचाने वाला, यह महा भयानक धर्म क्या वस्तु है? यह क्यों नहीं मनुष्य को मनुष्य से मिलने देता? क्यों नहीं मनुष्य को शान्ति से रहने देता? क्यों नहीं मनुष्यों को आज़ाद होने देता? इसने शैतान की तरह दिमाग़ को गुलाम बना लिया है। जो मनुष्य जिस रङ्ग में रङ्गा गया, उसके विरुद्ध नहीं सोच सकता—प्राण दे सकता है। यह है इस प्रबल शक्तिशाली धर्म की करामात!

वेश्या समझती है, कसब करना ही हमारा धर्म है, विवाहित

होकर गृहस्थ बनना नहीं। अछूत समझता है, औरों का मैला ढोना ही हमारा धर्म है, उत्तम वस्त्र पहिनकर उच्चासन पर बैठना नहीं। ब्राह्मण सोचता है, सब से श्रेष्ठ होना ही हमारा धर्म है, किसी की भी प्रतिष्ठा करना नहीं। सिपाही समझता है, जिसकी नौकरी करते हैं, उसके शत्रु का हनन करना ही हमारा धर्म है, दूसरा नहीं। पुजारी समझता है, इस पत्थर को सर्व-सिद्धि दाता भगवान् समझना ही हमारा धर्म है, इसके भिन्न नहीं। मुसलमान समझता है, काफ़िर को क़त्ल करना ही हमारा धर्म है, दूसरा नहीं। विधवा समझती है, मरे हुए पति के नाम पर बैठना और सबके अत्याचार चुप चाप सहना ही उसका धर्म है, उसके विपरीत नहीं। जल्लाद समझता है कि अपराधी को फांसी देना ही उसका धर्म है, इसके विपरीत नहीं। ग़रज इस जादूगर धर्म के नाम पर पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, जो कुछ मनुष्य को समझा दिया गया है, मनुष्य उसमें विवश हो गया है। उससे वह अपने मस्तिष्क का उद्धार नहीं कर सकता।

इस धर्म को भिन्न भिन्न समय में भिन्न-भिन्न रीति से लोगों ने मनन किया। बहुत से लोगों ने उसे केवल आध्यात्मिक बताया। बहुतों ने शरीर के साथ भी उसका संसर्ग क़ायम किया। परन्तु जब से मनुष्य ने धर्म शब्द पहिचाना, तब से धर्म के नाम पर—हत्या, पाखंड, छल, कपट, व्यभिचार, जुआ, चोरी, हरामखोरी, बेवकूफ़ी, ठगी, धूर्तता, अपराध और पाप सभी प्रशंसा और क्षमा की दृष्टि से देखे गये। इस धर्म का यहाँ

तक बोलबाला हुआ कि धर्म के नाम से ऐसी बहुत सी चीजें बेची जाने लगीं जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध न था। नदियों में स्नान करना धर्म, चिउंटियों और कीड़ों को खाना देना धर्म, कपड़ा पहिनना धर्म, ग़रज—चलना, फिरना, उठना, बैठना सभी में धर्म का असर घुसड़ गया।

इस नकली, झूठे और निकम्मे धर्म का भाव भी बहुत ऊँचा चढ़कर उतरा। रोम के पोप, मरने वालों से उनके पाप स्वीकृत कराके स्वर्ग के नाम हुण्डी लिखते थे। लाखों रुपये हड़प लेते थे। गया के पंडे स्त्रियों तक को दान करा लेते थे। काशी और प्रयाग में लोग प्राण दे देते थे। परन्तु आजकल धर्म की दर कूड़े-कर्कट से भी गिरी हुई है। मन्दिर के पत्थर के सामने एक पाई फेंक देने से धर्म हो जाता है, फटे कपड़े किसी दरिद्र को दे डालने से भी धर्म हो जाता है जूठन किसी भूखे को दे देने से भी धर्म हो जाता है किसी खास नदी में एक गोता लगाने, बड़-पीपल के ३,४ चक्कर लगाने, तुलसी का एकाध पत्ता चबाने, गाय का पेशाब पीने आदि से भी धर्म प्राप्त हो जाता है एकाध दिन भूखा रहकर फिर भाँति-भाँति के माल उड़ाने से भी धर्म होता है। माथे पर साढ़े ग्यारह नम्बर का साइनबोर्ड लगाने पर भी धर्म होता है। किसी पाखंडी ब्राह्मण को आटा दाल दे देने, कुछ खिलापिला देने या किसी भिखारी को एकाध धेला-पैसा दे देने से भी धर्म होता है।

रास्ते चलते किसी सिंदूर लगे पत्थर को सिर नवा देने से भी धर्म होता है। अगड़म-बगड़म कोई खास श्लोक जिसे कोई भी

पाखंडी बता सकता है, जाप करने मे धर्म होता है। नहाने से धर्म होता है नंगा बैठकर और मेंढक की तरह उछल कर चौके में जाकर खाने से धर्म होता है। रात को न खाने से धर्म होता है। हाथों से बाल नोचने से, गंदा पानी पीने से मल-मूत्र जमीन में गाड़ देने से धर्म होता है। मनों घी और सामग्री को अग्नि में फूँक देने से भी धर्म होता है।

अरे अभागे मनुष्यो ! जरा यह भी तो सोचो—धर्म आखिर क्या बला है ? तुम उसके पंजे में क्यों फँसे हुए हो ? जातियों की जातियों का इस धर्म-सघर्ष में नाश हो गया, पर धर्म को मनुष्यों ने न पहचाना। बौद्धों ने सारी पृथ्वी को एक बार चरणों में झुकाया; पीछे उन्होंने रक्त की नदियाँ बहाईं और अंत में नष्ट हुए। ईसाइयों ने भी मनुष्यों में हाहाकार मचाया। मुसलमानों ने शताब्दियों तक मनुष्यों को सुख की नींद न सोने दिया। धर्म मनुष्य जाति के हृदय पर पर्दा बना खड़ा है पर मनुष्य उससे सचेत नहीं होता, सावधान नहीं होता !

ईसाइयों और मुसलमानों के धर्म शास्त्र की चर्चा मैं छोड़ता हूँ। मेरी इस पुस्तक का सम्बन्ध केवल हिन्दुओं के धर्म से है, मैं हिन्दू-धर्म की पुस्तकों पर ही अधिकतर कुछ कहना चाहता हूँ। हिन्दुओं की धर्म-पुस्तकों के मुख्य तीन विभाग हैं। प्रथम विभाग में वेद, उपनिषद् और सूत्र ग्रन्थ, दूसरे विभाग में स्मृतियाँ और तीसरे में पुराण हैं। यद्यपि हिन्दू जाति इन सभी पुस्तकों को धर्म-ग्रन्थ मानती है, परन्तु इन सब में अनन्त मत-

भेद हैं, और इसी का यह फल है कि हिन्दू जाति धार्मिक दृष्टि से इतने भागों में विभक्त है कि जितने भागों में पृथ्वी की कोई भी जाति नहीं। प्रत्येक के पृथक-पृथक विश्वास हो रहे हैं। अकेले वेद और उसके साहित्य को धर्म-ग्रन्थ माननेवालों के सम्प्रदायों की ही गिनती करना कठिन है। स्मृतियों का काल, वर्णन, सब एक दूसरे के प्रतिकूल हैं, और पुराणों का तो हाल यह है कि उनसे वेद और प्राचीन साहित्य से प्रत्यक्ष में कोई तारतम्य ही नहीं दिखाई पड़ता। इनमें जिसने जिस सम्प्रदाय को माना—वही उनका विश्वासी हो गया। इन भिन्न भिन्न सम्प्रदाय, विश्वास और भावना के अधिकारियों के आचार-विचार भी भिन्न-भिन्न हैं। कुछ लोग वेद को अपौरुषेय और यज्ञपरक मानते हैं। उनके मत में वेद ज्ञान का भण्डार और ईश्वर-कृत है। कुछ लोग वेद को अपौरुपेय किन्तु यज्ञपरक मानते हैं। उनका मत है कि वेद ईश्वर कृत हैं और उसमें ज्ञान नहीं—यज्ञ के उपयोगी मन्त्र मात्र हैं। उन मन्त्रों के अर्थों से कुछ मतलब नहीं, केवल मन्त्रों में कुछ शक्तिशाली प्रभाव है जो फल देता है। कुछ लोग वेदों को ऋषियों द्वारा प्रणीत और ऐतिहासिक वस्तु मानते हैं। अन्ततः वेदों को यज्ञपरक मानने वाले हिन्दू जाति में अधिक हुए हैं। सायण और महीधर जैसे भाष्यकार और निरुक्तकार भी इस मत के हुए। एक समय ऐसा आया कि यज्ञ ही हिन्दुओं का सर्वोपरि हो गया और सैकड़ों वर्ष तक चला। उस यज्ञ में क्या-क्या पाप पुण्य न हुए। यज्ञों के लिए

घोड़े छोड़े जाते, युद्ध होते, राजाओं को व्यर्थ आधीन किया जाता, यज्ञ के लिए दिग्विजय की जाती, रक्त की नदियाँ बहाई जातीं। यज्ञों में राजा करोड़ों की सम्पदा ब्राह्मणों को दान करके भिखारी तक बन जाते थे। पीछे यज्ञों में पशु वध हुए। और भी भयानक स्थिति तो तब हुई, जब यज्ञ-विधान तान्त्रिकों के हाथ में आए और मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि तथा भैरव, भैरवी, चंडी, काली कराल की सिद्धियाँ भी यज्ञों द्वारा ही सिद्ध की जाने लगीं।

यज्ञों का विरोधी दल उपनिषदों का भक्त-मण्डल रहा उसने कर्मकांड को धर्म का काम मानने से इन्कार कर दिया। वह केवल मनन करने, ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञानी होने ही को धर्म मानने लगे। ऐसे लोग एकान्तवासी, त्यागी तपस्वी और मुनि बने। ये दोनों ही दल समय-समय पर खूब ही संघर्ष करते रहे।

बौद्धों के उदय के साथ हिन्दुओं का यज्ञ करने वाला धर्म दब गया था। वह फिर उभरा और तब यज्ञ नष्ट हो गए। यज्ञों के स्थान पर मूर्तियों की पूजा हिन्दुओं का सर्वोपरि धर्म बन गया। उस मूर्ति-पूजा में भी शैव, वैष्णव और शक्ति तीन प्रधान सम्प्रदाय हुए। तीनों परस्पर शत्रु और आचार-विचार में एक-दूसरे के सर्वथा विरोधी रहे।

तत्त्ववेत्ता और दार्शिनिक लोगों की मध्य-युग में खूब धाक रही और इन्होंने धर्म के नियमों को प्रायः उच्छृंखल रीति से समझा, तर्क और विवेक के चक्र-व्यूह में बुद्धि को घुमाया।

इसमें सब से अधिक चमत्कार योगशास्त्र ने प्रकट किया। योग के अद्भुत और अव्यवहारिक चमत्कारों पर आज भी पृथ्वी के मनुष्य विश्वासी हैं। एक हद तक योग भी उच्च कोटि का धर्म बन गया। जो कोई भी योगी हो सकता है, उसके लिए यह निर्विवाद बात है कि वह पूर्णतया धर्मात्मा और ईश्वर भक्त है और मुक्ति का अधिकारी है।

स्मृतियाँ सूत्र ग्रन्थों के आधार पर बनीं। धर्म सूत्र और गृह- सूत्र बनते ही गये, जब तक यज्ञों के प्रपंच बढ़ते गए। पीछे तो इन स्मृतियों ने अनगिनत जातियाँ, अनगिनत आचार, तथा अनगिनत लोकाचार मनुष्य समाज में उत्पन्न कर दिए।

पुराणों ने अन्तिम प्रभाव पैदा किया, और भिन्न-भिन्न प्रकार के महात्म्य, श्रद्धा पैदा करने वाली कहानियाँ, नये से-नये ढकोसले और बे सिर-पैर की बातें धर्म सम्पुट की भाँति उनमें भरदीं। लोग अन्धविश्वास और अज्ञान के पूर्ण वशीभूत हो गए।

इन सभी धर्म ग्रन्थों में कुछ है ही नहीं यह मेरा कहना है। पुराणों से इतिहास की अप्रतिम सामग्री आज भी हमें उपलब्ध हो सकती है। तर्क, मीमांसा, योग और साँख्य में बहुत बुद्धिगम्य बातें हैं परन्तु यदि कोई वस्तु नहीं है तो धर्म। इन सभी धर्म-ग्रन्थ कहाने वाली पुस्तकों ने यदि किसी विषय में हमें अन्धा और गुमराह बनाया है तो केवल धर्म के विषय में।

तब धर्म क्या चीज है? जैसा कि हम कह चुके हैं—भंगी

का धर्म पाखाना साफ करना, वेश्या का कसब कमाना, और विधवा का मरे पति के नाम पर बैठी रोया करना धर्म है। उस धर्म की हम चर्चा नहीं करते। धर्म-शास्त्रों में धर्म की कैसी व्याख्या है, इस पर थोड़ा प्रकाश डालना चाहते हैं।

मनुस्मृति कहती है कि धीरज, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय,निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण हैं। इन दसों में सिपाही का धर्म हिंसा तो नहीं आया। इसमें सत्यासत्य की व्याख्या भी नहीं की गई। अब इस श्लोक में वर्णित लक्षणों को बुद्धि की कसौटी पर कस कर हम देखते हैं।

सब से प्रथम सत्य को लीजिए। सत्य धर्म का लक्षण है। मैं सत्य बोलने का व्रत लेता हूँ। मेरे पास १० हजार रुपये जमीन में अत्यन्त गोपनीय तौर पर गड़े हैं, उनका पता चलना भी सम्भव नहीं। हजार-पाँच सौ ऊपर भी मेरे पास हैं। एक दिन चोर ने गला आ दबाया। कहा—"जो है रख दो, वरना अभी छुरा कलेजे के पार है।" अब आप कहिए क्या मुझे सत्य कह देना चाहिए कि इतना यह रहा और १० हजार वहाँ जमीन में गड़ा है? मेरी राय में ऐसा सत्य महामूर्खता का लक्षण होना चाहिए। जब दुर्योधन की मृत्यु का समाचार धृतराष्ट्र ने सुना, तो उन्होंने पूछा—वह भीम कैसा बली है जिसने मेरे बेटे दुर्योधन को मार डाला! उसे मेरे सन्मुख लाओ। मैं उसे छाती से लगा कर प्यार करूँगा। तब कृष्ण ने उनके सामने लोहे की मूर्त्ति

सरका दी, जिसे बलपूर्वक इस भाँति अन्धे धृतराष्ट्र ने मसल डाली कि सचमुच यदि भीमसेन उनके हाथ में चढ़ गये होते तो उनकी चटनी बन जाती। अब मैं यह पूछता हूँ कि यहाँ छल करके कृष्ण ने अधर्म किया या धर्म ?

हिंसा की बात भी विचारनी चाहिए। मैं एक चींटी को मार कर हत्यारा कहाता हूँ, परन्तु एक सिपाही असंख्य मनुष्यों को वध करके भी वीर कहाता है। क्यों ? युद्ध में भी तो हत्या होती है। ऐसी हत्याएँ करने वाले, पापी, अधार्मिक क्यों नहीं ?

इसी प्रकार प्रत्येक लक्षण को हम यदि कसौटी पर कसें तो हम धर्म के इन दस लक्षणों पर निर्भर नहीं रह सकते।

दर्शन शास्त्र बताते हैं"यतोऽभ्युदय:नि:श्रेयससिद्ध:सधर्म:" जिस काम के करने से अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनों की प्राप्ति हो वही धर्म है। अभ्युदय का अर्थ है ऐहिलौकिक सर्वोच्च सुख जिसमें सब प्रकार की व्यक्तिगत और सामूहिक स्वाधीनता, अधिकार प्रणाली, जीवन तारतम्य की धाराएँ आ गईं। नि:-श्रेयस का अर्थ है—परलौकिक सर्वोच्च स्थिति अर्थात् मुक्ति का अर्थ यह है कि जीवन के अन्तस्तल में मनुष्य की सब वासनाएं और इच्छाएँ तृप्त हो जायें। उसका मन सब वस्तुओं से विमुक्त हो जाये। उसके सब बन्धन नष्ट हो जायें। वह जन्म न धारण करे। यही मुक्ति है।

मुक्ति के लिए मनुष्य को ऐहिलौकिक कर्म इस भावना में करने अनिवार्य हैं कि वह उनमें तनिक भी लिप्त न हो, और

ऐसा व्यक्ति अभ्युदय की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। इसीलिए ऐसे मनुष्य जो मुक्ति की भावना के लिए ही ऐहिलौकिक सब स्वार्थों और दायित्वों को त्याग कर चले, वह धर्म का रक्षक नहीं, धर्मात्मा भी नहीं। और ठीक उसी प्रकार जो कोई ऐहिलौकिक भावनाओं में फँसकर मुक्ति की धारणा से च्युत हो जाय, वह भी धर्मात्मा नहीं। धर्मात्मा वह है जो इस भाँति आचरण करे कि दोनों भावनाएँ समान भाव से उसके साथ रहें।

सारी पृथ्वी पर एक कृष्ण ही ऐसा महापुरुष जन्मा—जिसने दोनों भावनाओं को सांगोपांग निभाया। यह चरम कोटि का भोगी और चरम कोटि का योगी प्रसिद्ध है। उसकी वीतरागता और माया से अलिप्त रह कर माया का उपभोग करने के कौशल को आज हज़ारों वर्ष से असंख्य विद्वान् समझने की चेष्टा कर रहे हैं—पर समझ नहीं पाते।

तब धर्म क्या है? हमारी राय में धर्म वह है, जिससे मनुष्य मनुष्य के प्रति उत्तरदायी हो, प्राणीमात्र के प्रति उत्तरदायी हो। धर्म वह है, जिसके आधार पर मनुष्य अधिक से अधिक लोकोपकार कर सके। धर्म वह है, जिससे हृदय और मस्तिष्क का पूरा विकास हो। दया धर्म है, प्रेम धर्म है, सहनशीलता धर्म है, उदारता धर्म है, सहायता धर्म है, उत्साह धर्म है त्याग धर्म है।

हे हिन्दू जाति के आशास्तम्भों! हे मेरे प्यारे नवीन कुमारो और कुमारिकाओं।! इस नवीन धर्म को हृदयंगम करो—जिस

से तुम्हारा मस्तिष्क और हृदय कमल पुष्प की भाँति खिल जाय और तुम मन से, वचन से, और कर्म से किसी के गुलाम न रहो। धर्म वह है जो स्वाधीनता, प्रकाश, और जीवन दे। धर्म वह है जो जातियों को संगठित करे, प्राणियों को निर्भय करे, जीवन को सुखी और सन्तुष्ट करे। धर्म के ढकोसलों को त्यागो, नवीन धर्म को ग्रहण करो, तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा।

इस बात की परवा न करो कि तुम्हारी इस स्वतंत्र भावना में तुम्हारे बुजुर्ग लोग बाधा देंगे। मैं कहता हूँ कि तुम उनकी आज्ञाएँ मानने से इन्कार कर दो, जिन्हें तुम अपनी दृष्टि से मूर्खतापूर्ण, अव्यवहारिक और अपनी आत्मा की आवाज के विपरीत समझते हो। प्राचीन विद्वानों का मत है कि गुरुजनों की उन्हीं आज्ञाओं का पालन करना चाहिए जो नीति और धर्म के अनुकूल हों, और तुम्हारी आत्मा की गंभीर आवाज भी उसका अनुमोदन करे।

---

(२)

सदुपयोग और दुरुपयोग

मेरा कहना यह है कि हिंसा कोई पाप नहीं है और अहिंसा कोई धर्म नहीं है। इन दोनों वस्तुओं का सदुपयोग धर्म और दुरुपयोग पाप है। एक जज अपराधी को फांसी की आज्ञा देता है। अपराधी ने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा! अपराधी से वह परिचित भी नहीं है। अपराधी पर वह क्रुद्ध भी नहीं। वह न्याय और शान्ति के अधिपति के पद पर बैठा है। वह बहुत गम्भीरता और विवेचन से यह देखता है कि अपराधी सार्वजनिक शान्ति के लिए, वर्तमान समाज के नियमों के आधार पर विघ्न करता है या नहीं, और जब वह उसे ऐसा पाता है तो अपने उन दिये हुए अधिकारों के आधार पर, जो उसे उसी पद के कारण ही प्राप्त हैं, अपराधी को मृत्यु तक फाँसी पर लटकाये जाने की आज्ञा देता है। समय पर जेल-अधिकारी और जल्लाद उसे फांसी देकर मार डालते हैं। जज, जेल अधिकारी, जल्लाद सभी को उस व्यक्ति से समवेदना होती है। इसलिए वे लोग हिंसक होते

हुए भी पापी नहीं समझे जाते

स्वयं भी जज का स्थान ले सकता है। एक व्यक्ति ने मेरा वही अपराध किया है जो हर तरह जज की दृष्टि में अपराधी को फांसी का अधिकारी निर्णय करेगा। मैं स्वयं भी जज के बराबर ही बुद्धिमान और योग्यता सम्पन्न व्यक्ति हूँ। मैंने स्वयं ही उसे फांसी देदी। जेल के और जल्लादों के प्रपंचों में भी मैं नहीं पड़ा। ऐसी दशा में मैं हिंसक और पापी हूँ।

क्यों ? सुनिये ! पहिली बात तो यह कि मैं न्याय करने का अधिकारी नहीं, यह मेरा काम न था। दूसरे, सिर्फ घटना का सम्बन्ध मेरे साथ था। इसलिए मैंने यह न्याय अपने हाथ में ले लिया। ऐसा करने में मन में राग द्वेष तो था ही। तीसरे, आज मैंने लिया कल दूसरा लेगा। उसे मेरा उदाहरण काफी है। उसे मेरी योग्यता से कोई सरोकार नहीं। अपराधी को कब्जे में करके फांसी देने की योग्यता तो उसमें है। चौथे, अपराधी और उसके संरक्षकों को अपील का स्थान नहीं। मैं स्वयं ही आरोपी और स्वयं ही अधिकारी बन गया। इस लिए मैं संयत, विवेकी, और सत्य पर स्थिर नहीं रह सकता। अतः मैं हत्याकारी हूँ और पाप का भागी हूँ।

मुसलमानों के पूज्य हज़रत अली एक बार एक अपराधी को क़त्ल करने लगे। जब वे तलवार लेकर अपराधी के पास आये तो अपराधी ने क्रोध में भर कर उन्हें गालियाँ दीं और उन पर

थूक दिया। इस पर अली को गुस्सा आ गया। उन्होंने तलवार रख दी और कहा—इस वक्त मैं इसे क़त्ल नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे गुस्सा आ गया है।

यह उदाहरण इस बात पर प्रकाश डालेगा कि वास्तव में हत्या या हिंसा में निर्भयता किस दर्जे तक उसे पुण्य बनाती है।

आपके पास एक घोड़ा है उसकी शक्ति का आप सदुपयोग कीजिए, वह आप की गाड़ी को खींच कर जहाँ आप चाहें ले जायगा। और दुरुपयोग होने पर वही घोड़ा गाड़ी को गिरा कर चकनाचूर कर देगा।

मैं सत्य बोलना पसन्द करता हूँ। मैं सत्य को धर्म समझता हूं, परन्तु मैं चिकित्सक हूँ। एक रोगी को देखने मैं गया। उस का हृदय बहुत दुर्बल है और उसकी हालत अच्छी नहीं है। अब यदि उसे उत्साह और साहस नहीं मिलता है तो वह तत्काल मर जा सकता है। उसे देखकर मैं चिन्तित होता हूँ, परन्तु ऊपर से हँस कर लापरवाही दिखाता हूँ। रोगी से गप-शप करता हूँ, हँसता हूँ, और उसे अतिशीघ्र आरोग्य लाभ होने की आशा दिलाता हूँ। यह सब बिल्कुल झूठ है, परन्तु पाप नहीं। मैं इसे धर्म समझता हूँ, और इसका कारण यह है कि इस झूठ में मेरा कोई स्वार्थ नहीं। केवल परोपकार की भावना ही है।

पिछले अध्याय में मैंने चोर का उदाहरण दिया है। अब मैं फिर आप से पूछता हूँ कि चोर को सत्य के नाम पर गड़ा हुआ गुप्त धन बता देना धर्म है या बेवकूफी ? सब लोग यही कहते

हैं कि धर्म की परीक्षा यह है कि वह सदा सज्जनों की रक्षा करे और दुष्टों का दमन करे। तब वह 'सत्य' धर्म कहाँ रहा जो चोर को तो माल दिलवाए और मालिक को लुटवा दे? वहाँ तो झूठ बोलना ही धर्म है।

एक सिपाही दर्प से अपने को योद्धा कहता है। उसे शत्रुओं के हनन करने का गर्व है। जब वह खून की नदी बहा कर आता है, लोग गाजे-बाजे से उसका सत्कार करते हैं। वह वीर की भाँति ऊँची गर्दन करके सब के बीच में चलता है। मैं पूछता हूँ—किस लिये उसकी हत्या हिंसा नहीं मानी गई, पाप में नहीं सम्मिलित की गई? इसमें क्या युक्ति है?

इसका उत्तर वही है जो मैं कह चुका हूँ। उसकी उस खून-ख़राबी में सार्वजनिक शान्ति की भावना है। वह मानव जाति के प्रति कुछ त्याग का भाव रखकर ही यह कार्य करता है। यहाँ हम उस विषय पर न जायँगे कि उसका यह भाव ठीक है या नहीं।

संसार में और भी अनेक ऐसी बातें हैं कि जिनका सदुपयोग ही धर्म कहा जाता है। महाभारत में विश्वामित्र ऋषि का चांडाल के घर में घुसकर कुत्ते का सूखा माँस चुराने की बड़ी मज़ेदार घटना है। जब ऋषि वह सूखी हुई टाँग चुराकर चलने लगे, तब चांडाल जग उठा और ऋषि को पहचानकर बहुत भला-बुरा कहा। इस पर ऋषि तनिक भी न झेंपे। उन्होंने चांडाल को ऐसा आड़े हाथों लिया कि बेचारे की बोलती बन्द हो गई।

उन्होंने कहा-"अरे, ढीठ! तू मुझे उपदेश देने का साहस करता है मैं जो कुछ करता हूँ उसे खूब समझता हूँ, और मैं अवश्य करूँगा।"

जहाँ एक तरफ़ ऐसी कुत्सित और वीभत्स चोरी—ऐसे बड़े महात्मा द्वारा की जाने पर भी दोषपूर्ण नहीं मानी गई, वहाँ हम महाभारत ही में एक दूसरी घटना पाते हैं।

शंख और लिखित दो भाई थे। शंख ज्येष्ठ था। दोनों ऋषि थे। दोनों के आश्रम पृथक-पृथक थे। लिखित भाई से मिलने उनके आश्रम में गये। भाई बाहर गये हुए थे। लिखित ने आश्रम से एक पक्का मधुर फल तोड़ा और खाने लगे। इतने ही में शंख आ गये। शंख ने देख कर कहा—अरे! यह तुमने क्या किया?

लिखित ने हँस कर कहा—यहीं से तोड़ा!

शंख ने चिंतित होकर कहा—यह तो बुरा हुआ, अरे! यह तो चोरी हुई।

लिखित ने व्याकुल होकर कहा—क्या चोरी हुई?

शंख ने दुखी होकर कहा—निःसन्देह! तुम अभी राजा सुधन्वा के पास जाओ और दण्ड की याचना करो।

लिखित उसी समय सुधन्वा की ड्योढ़ियों पर पहुँचे। ऋषि का आगमन सुनकर उन्होंने मन्त्रियों सहित द्वार पर आकर उन का सत्कार किया और भीतर ले गये। कुशल पूछा, पूजा की और हाथ बाँधकर कहा—ऋषिवर! आज्ञा से कृतार्थ कीजिए।

ऋषि ने कहा—राजन्! मैंने चोरी की है, मुझे दण्ड दीजिए उन्होंने सब घटना भी सुना दी। राजा ने सुनकर कहा—ऋषिवर

राजा को अभियोग सुनकर अपराधी को अपराध के गुरुत्व पर विचार करके जैसे दंड देने का अधिकार है, वैसे ही उसे क्षमा करने का भी। मैं आपको क्षमा करता हूँ। ऋषि ने कहा—नहीं राजन्, मैं दंड की याचना करता हूँ। तब राजा ने विवश हो राज-नियमानुसार ऋषि के दोनों हाथ कटवा दिये। तब लिखित खून से टपकते दोनों कटे हुए हाथों को लिये भाई के पास जाकर बोले—भाई मैंने राजा से दंड प्राप्त कर लिया है, अब आप भी क्षमा कर दीजिए।

यह छोटी-सी हृदय को हिला देने वाली घटना इस बात पर प्रकाश डालती है कि अकारण एक फल भाई के बाग़ से बिना आज्ञा तोड़कर खाना कितना गुरुतर अपराध है, और सकारण चांडाल के घर से सूखा कुत्सित मांस चुराना भी अपराध नहीं, प्रत्युत कर्तव्य है।

इन सब बातों के अलावा कुछ ऐसी बातों का दुरुपयोग होता रहा है जिनका यदि सदुपयोग होता तो अवश्य ही उससे जगत का कल्याण होता।

उदाहरण के तौर पर दान को लेता हूँ। इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं कि दान-दाता त्याग करता है, और उसका दिया हुआ धन अपेक्षाकृत अधिक लोक-सेवा में लग सकता है। परन्तु भारतवर्ष में दिए हुए दान बहुधा तमोगुण पर्ण होते हैं। उन्हें दाता लोग किसी संस्था को, किसी विद्वान को, किसी गुणी को, इसलिए नहीं देते कि वह उससे अपना विकास करें। उनके

दान प्रायः अंधश्रद्धा या अन्ध-कूप दान होते हैं । जैनियों ने करोड़ों रुपयों के दान देकर अपने साम्प्रदायिक मन्दिरों की प्रतिष्ठा की है। उसमें हीरे-मोती की प्रतिमाएँ और सोने-चाँदी की दीवारें बनाई गई हैं। क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि दिगम्बर वीतराग सर्व त्यागी महात्माओं की मूर्तियों का इस ऐश्वर्य के प्रदर्शन से क्यों उपहास किया जाता है ? क्या वे प्रतिमाएँ मिट्टी की बनाकर चटाई की झोंपड़ी में नहीं पूजी जा सकतीं ? वही जैनी जो दया धर्म को ही प्रधान कार्य समझते हैं और जिनके धर्म सम्बन्धी नियम बड़े कठिन बड़े विकट और कष्ट-साध्य हैं—और वे बहुत दर्जे तक उनका पालन भी करते हैं, और ऐसे लोग जो नित्य मन्दिर में जाते, भक्ति-भाव से पूजा करते, व्रत-उपवास भी करते हैं, परन्तु दुकान पर आकर वे भी धर्म को खूँटी पर रख देते हैं। दुकान पर वे झूठ बोलते हैं, निर्दयीपन भी करते हैं। वे चिउँटियों पर, कीड़े-मकोड़ों पर दया दिखाते हैं। वे लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति धर्म खाते लगा देते हैं, पर किसी दरिद्र पावनेदार पर चार पैसे नहीं छोड़ सकते वे डिग्री करावेंगे कुर्क़ी लावेंगे, और उसके बर्तन तक बिकवाकर अपना पावना सूद सहित लेंगे। यह दया धर्म किस मतलब का है ? इस दया-धर्म से जगत का, मनुष्य समाज का क्या उपकार होगा ? इन हीरे पन्ने की मूर्तियों, से सुनहरी दीवारों से, जगमगाते मन्दिरों से, किसी का क्या भला होगा ? यह धर्म लानत भेजने योग्य है—यह दया और श्रद्धा का भयानक दुरुपयोग है !!

मारवाड़ी समाज ने कुछ उच्च श्रेणी के दाता और देशसेवक पैदा किये हैं। उन पर मारवाड़ी समाज को ही नहीं, प्रत्युत देशभर को अभिमान है। परन्तु इन महाशयों के दान क्या सच्चे दान हैं? यह मैं मान सकता हूँ कि ये दान देश में जनता के काम आये हैं? पर जो लोग करोड़ों रुपये कमाने के ढंग बराबर जारी रखकर उसमें से कुछ लाख दान कर देते हैं—उनके दान कभी भी धर्म दान नहीं कहे जा सकते। ये सब आसुरी दान हैं। क्या सब मनुष्यों का करोड़ों रुपये, कमाने के साधनों का स्वयं अपने ही लिए उपयोग करना धर्म है क्या वह करोड़ों रुपये लाखों मनुष्यों के परिश्रम का बेइमानी और धूर्तता से ठगा हुआ हिस्सा नहीं? जो मिलमालिक लोग हैं और जिन की मिलों में हजारों मजदूर काम करते हैं, उनकी भीतरी दशा देखने ही से दुःख होता है और पाप की कमाई की असलियत खुल जाती है। वे लोग, स्त्री, पुरुष और बच्चे जी तोड़ कर, अस्वास्थ्यकर और अवैज्ञानिक परिश्रम करते हैं। स्त्रियों के प्रसव के सुभीते नहीं। उन्हें इतना कम वेतन मिलता है कि वे सुधरे हुए ढंगों पर नहीं रह सकते। यदि उनकी कमाई का हिस्सा एकत्र करने वाले करोड़पति घमंड से, और उसे अपना धन न समझ दो चार लाख का दान न करके इन्हीं मजदूरों का वेतन चौगुना कर दें तो वे कहीं ज्यादा पुण्य के भागी हैं। क्योंकि यह रुपया तो उन्हीं की कमाई का है। यदि वे न कमावें तो पूँजी के द्वारा कोई भी धनपति रुपया नहीं कमा सकता। उस पर उनका

अधिकार है। परन्तु कैसे मज़े की बात है कि वे कमाने वाले मजदूर लोग तो कुत्तों की तरह मैले कुचैले, भूखे नंगे और संसार के सब भोगों से रहित होकर जीवन व्यतीत करते हैं और उनकी कमाई को हड़पनेवाले उनके रुपयों से सुनहरी दीवारों के मंदिर बनवाते हैं—जिनमें हीरे और पन्नों की प्रतिमाएँ रहती हैं।

अफ़सोस तो यह है कि इन स्वार्थी, ठगों और लुटेरे अमीरों के दाँतों में उँगली डालकर गरीबों के हक के पैसे निकालने वाले अभी देश में नहीं पैदा होते। सेठ मोटेमलजी ने एक लाख रुपया अछूतोद्धार के लिए दिया, उन्हें धन्यवाद है। अखबारों में मोटे हैडिङ्ग छपते हैं। पर कोई सम्पादक यह नहीं पूछता कि यह रुपया देने में उन्होंने कुछ त्याग भी किया है ? उन्हें कुछ कष्ट भी इससे हुआ है ? क्या उन्होंने अपने रहने की कोठी बेच कर दिया है, या स्त्री के निकम्मे गहने बेचकर, या अपना अनावश्यक फ़र्नीचर बेच कर ? हम तो देखते हैं कि सट्टे में बीस लाख कमाया। एक लाख दे दिया। वाह-वाह लूट ली !

अजी, मैं यह पूछता हूँ कि मैं डाका डालकर, खून करके या और कोई जालसाजी करके कहीं से दस बीस लाख रुपया ले आऊँ तो उसमें लाख, पचास हज़ार रुपये दान कर देने से मुझे क्या धर्म होगा ? मेरा पाप नष्ट हो जायगा या नहीं ? यदि नहीं होगा तो इन चालाक अमीरों के दान भी धर्म खाते नहीं समझे जावेंगे, और उनके अपराधपूर्ण आमदनी के ज़रिए कभी क्षमा की दृष्टि से नहीं देखे जावेंगे।

बड़े-बड़े व्यापारियों के यहाँ, कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली में एक धर्मादा खाता होता है। वे व्यापारी जितने रुपये का माल ग्राहकों को बेचते हैं। उनसे धर्मादा भी कुछ लेते हैं। यह यद्यपि उनकी गाँठ का नहीं होता, पर उसे स्वेच्छा-पूर्वक ख़र्च करने का उन्हें पूर्ण अधिकार होता है। और क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि यह रुपया किस काम में ख़र्च किया जाता है ? वे बेई-मान धूर्त अमीर उससे अपनी बेटी का ब्याह करते हैं। मरे हुए माता-पिता का कारज करते हैं। मैंने स्वयं ऐसे उदाहरण देखे हैं। यह धन लाखों रुपये की संख्या में एकत्र हो जाता है।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र का उदाहरण लीजिए। आज तक लोग लाखों वर्ष से इस सत्यवादी राजा के दान की प्रशंसा करते, और उसकी रानी के कष्टों पर आँसू बहाते आये हैं। परंतु मैं यह जनाना चाहता हूँ कि इस राजा को अपना समस्त राज्य एक भिक्षुक को दे डालने का क्या अधिकार था मुझे इससे कोई बहस नहीं कि भिक्षुक ऋषि श्रेष्ठ विश्वामित्र थे—और इन्द्र के भेजे हुए उसकी परीक्षा के लिए आये थे। मैं तो इस बात पर विचार करना चाहता हूँ कि क्या राजा को इस बात का अधि-कार होना चाहिए कि वह चाहे भी जिसको अपना राज-पाट दान करदे ? फिर भिक्षुक की इस निर्दयता की भी कहीं निन्दा नहीं की गई कि उसने दक्षिणा के लिए उसे और उसकी स्त्री-पुत्र तक को बिकवा दिया। मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि यदि मैं स्वीकार करलूँ कि राजा को ऋषि का क़र्ज़ा चकाना

ज़रूरी था—तो क्या अपनी स्त्री और पुत्र को बेचकर क़र्ज़ा चुकाना उनका धर्म था ? क्या मैं इस बात को स्वीकार करलूँ कि भविष्य में जब कभी कोई निर्दयी ज़ालिम क़र्ज़दार मेरी गर्दन पर सवार हो तब मैं अपनी स्त्री को और बच्चे को बाज़ार में बेचदूँ—यही मेरा धर्म है ? मेरी स्त्री और बच्चे गोया अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं रखते। मैं इस पुस्तक के पाठकों से पूछता हूँ कि उनमें कितने ऐसे हैं जो ऐसे मौक़े पर इस धर्म का पालन करेंगे, अपनी स्त्री और बच्चे को बीच-बाज़ार बेच देंगे ?

राज्य राजा की सम्पत्ति है या राष्ट्र की, इसका फ़ैसला तो आज पृथ्वी भर की जातियाँ मिलकर कर ही रही हैं। शीघ्र ही लोहू की लाल नदियाँ एशिया और योरप के मैदानों में बहने वाली हैं, पर यह हमारी चर्चा का विषय नहीं। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि राजा हरिश्चन्द्र का इस प्रकार भिखारी को राज्य दान देना, और अपनी स्त्री पुत्र को बाज़ार में इस प्रकार बेच देना—अक्षम्य अपराध है।

इससे भिखारियों के प्रति लोगों के असाधारण अधिकार के भाव उत्पन्न हो गये हैं। और भिखारी भी धृष्ट हो गये हैं। मैं समझता हूँ आज हज़ारों वर्ष से भिखारी लोग राजाओं और सर्वसाधारण को कर्ण और हरिश्चन्द्र के उदाहरण देकर बढ़ावा देकर बेवकूफ बनाते और ठगते रहे हैं।

मैं फिर कहता हूँ, देश के व्यापारी जो अपनी भयानक

मशीनों और रहस्यपूर्ण बही-खातों तथा पापपूर्ण सट्टों और जुआ चोरियों के द्वारा करोड़ों रुपये कमाते और उनमें से लाखों दान करते हैं, वे कभी भी धर्म के अधिकारी नहीं, क्षमा के योग भी नहीं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वे व्यापारी देश के पुत्र नहीं, देश के साथ उनकी कोई सहानुभूति भी नहीं। देश के दुःख के साथ उनका दुःख और देश के सुख के साथ उनका सुख भी नहीं। वे विदेशी सरकार की भाँति तस्मे के लिए भैंस हलाल करने वाले निर्दयी स्वार्थी हैं। हाल ही में रुई, घी, अन्न, सस्ते होने पर ये लोग सिर पीटने लगे और इनके पेट फट गए ये लोग महंगाई बने रखने को सभी सद् असद् उपाय काम में लाते रहते हैं। आज देश सरकार की स्वार्थान्धता को भी नहीं सहन करता तो इन पतली दाल खाने वालों को यों ही कैसे छोड़ देगा ? ये घरेलू चूहे हैं जो स्वयं क्षुद्र होने पर भी सिर्फ कुतर-कुतर कर देश की महान हानि कर रहे हैं।

ये श्री मन्त व्यापारी केवल बड़े-बड़े दान करके देश के भाई या धर्मात्मा नहीं बन सकते। इनके लाखों रुपये के ये दान उस पाप की कमाई का हिस्सा है जो सट्टा, सूद, हरामी-पन और गरीब के पसीने निचोड़ी हुई है। प्राचीन रजवाड़ों में लोग राजा लोग डाकू लोगों से लूट का भाग लिया करते थे और वह रकम पाकर उनकी तरफ से आँख मींच लिया करते थे। ऐसे दानों को ग्रहण करने वाले भी उसी श्रेणी के हैं। ऐसे धन को दान करने वाले तो पापिष्ठ हैं ही, ग्रहण

करने वाले भी धर्म-हीन है। धर्मग्रन्थों में यह बात भी विचार से लिखी पाई गई है कि धर्मात्मा को किस-किस का धन, अन्न, और आतिथ्य स्वीकार करना चाहिए। तेजस्वी लोग कभी अन्याई का दान और आतिथ्य नहीं स्वीकार करते। महापुरुष कृष्ण ने जिस वीरता से दुर्योधन का राजसी स्वागत और आतिथ्य अस्वीकार करके धर्मात्मा विदुर का दरिद्र आतिथ्य स्वीकार किया था, यह बात विचारने के योग्य है।

यदि कोई अमीर अपने सतखंडे महलों को सामने खड़ा हो कर ढहा दे, या उन्हें अस्पताल बनवा दे, ठाट-बाट की चीजें, जवाहरात, जेवर जायदाद, सब सार्वजनिक सेवा में दान करदे और भविष्य में देश के साथ मजूरी करके खाये, जैसा कि देश खाता है—वैसे ही घरों में रहे जैसे में देश रहता है और निर्वाह के बाद देश के साथ कन्धे-से-कंधा मिला कर सार्वजनिक कार्य कर कटे, मरे, जिये, फले-फूले तो निस्सन्देह वह धर्मात्मा है।

राजा महेन्द्रप्रताप और दर्बार गोपालदास के दान यद्यपि राजनैतिक भावनाओं से परिपूर्ण हैं, पर वे मेरी दृष्टि में धर्म-दान की श्रेणी हैं।

भाग्यहीन दारा, जब औरंगजेब द्वारा पकड़ा जाकर जल्लादों के साथ एक गन्दी और नंगी हथिनी पर दिल्ली के बाजारों में घुमाया गया, जहाँ वह सदा ही हीरे-मोती लुटाता निकलता था। तब एक भिखारी ने उसे देख कर इस प्रकार कहा--"दारा, ओ बादशाह! तूने हमेशा ही कुछ-न-कुछ मुझे दिया, आज भी कुछ

दे।" दारा के पास कुछ न था। वह जो वस्त्र पहने था, उसे उसने उतारा और भिक्षुक को दे दिया !!

महाभारत में एक सुन्दर कथा का उल्लेख है—

जिस समय सम्राट युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ समाप्त किया, और विश्व भर की सम्पदा को दान कर दिया, तब उन्हें कुछ गर्व हुआ और कृष्ण से कहने लगे कि महाराज ! अब मैं सार्व-भौम पद का अधिकारी हुआ !!

भगवान् कृष्ण कुछ न कहने पाये थे कि इतने में एक अद्भुत मामला हुआ। सबने देखा—एक नौला जिसका आधा शरीर सोने का और आधा साधारण है, किसी तरफ से आकर यज्ञ के पात्रों में लोट रहा है। सब लोग परम आश्चर्य से इस जीव को देखने लगे। तब कृष्ण ने कहा—हे कीटयोनिधारी ! तुम कौन हो ? यक्ष हो कि पिशाच, देव हो या दानव, सत्य कहो। और किस अभिप्राय से पवित्र यज्ञ-पात्रों में लोट रहे हो ?

सब को चकित करता हुआ वह जीव मनुष्य-वाणी से बोला—हे महाराज ! मैं न य हूँ न देव, वास्तव में क्षुद्र कीट हूँ। बहुत दिन हुए एक महान् पात्र के अवशिष्ट जल में मुझे स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस पवित्र जल से मेरा आधा शरीर भीगा था, उतना ही वह सोने का हो गया। मैंने सुना था कि सार्वभौम चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठर ने महायज्ञ किया है। मन में विचारा कि चलो मरती-जाती दुनिया है—

एक बार लौट कर बाकी का आधा शरीर भी स्वर्ण बना लूँ। इसी इरादे से आया था, परन्तु यहाँ तो ढाक के तीन ही पत्ते दीखे, नाम ही था। मेरा इतनी दूर का प्रवास व्यर्थ हुआ। मेरा शरीर तो वैसा ही रहा।

यह सुन कर युधिष्ठिर मग्न हो गये। उन्होंने उत्सुकता से पूछा—भाई, वह कौनसा महान् राजा था जिसने भारी यज्ञ किया था। दया कर उसका आख्यान सुना कर हमारे कौतूहल को दूर करो।

नेवले ने शान्त वाणी से कहना शुरू किया—एक बार देश में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा, बारह वर्ष तक वर्षा न हुई। पशु-पक्षी सब मर गये। वृक्ष वनस्पति सब जल कर राख हो गईं। मनुष्यों के नर कंकालों के ढेर लग गये। वृक्षों की पत्ती, जड़ और छाल तक लोग खा गये। मनुष्य मनुष्य को खाने लगा। ऐसे समय में एक छोटे से ग्राम में एक दरिद्र ब्राह्मण-परिवार रहता था। उसमें चार आदमी थे। एक ब्राह्मण, दूसरी उसकी स्त्री, तीसरा उसका पुत्र और चौथी पुत्रवधू। इस धर्मात्मा का यह नित्य का नियम था कि भोजन से पूर्व वह किसी भी अतिथि को पुकारता था कि कोई भूखा हो तो भोजन कर ले। यह नियम उसने इन दुर्दिनों में भी अखंड रक्खा। भूख के मारे चारों अधमरे हो गये थे। सप्ताह में एकाध बार कुछ मिलता, पर नियम से ब्राह्मण किसी अतिथि को पुकारता। इस काल में अतिथि की क्या कमी थी? कोई-न-कोई आकर उसका आहार खा जाता

था। एक दिन पन्द्रह दिन के पीछे कुछ साधारण खाद्य दिव्य मिला। जब चार भाग करके चारों खाने बैठे तब फिर उसने किसी भूखे को पुकारा और एक बूढ़े ने आकर कहा—मैं भूख से मर रहा हूँ, ईश्वर के लिए मुझे भोजन दो। गृहस्थी ने आदर से उसे बुलाया और अपना भाग उसके सामने धर दिया। खा चुकने पर जब उसने कहा—अभी मैं और भूखा हूँ। तब गृहणी ने, और उसके पीछे बारी-बारी से पुत्र और पुत्र वधू ने भी अपने अपने भाग दे दिये। इतने पर अतिथि ने तृप्त होकर आशीर्वाद दिया और हाथ धोकर वह अपने रास्ते लगा। वह धर्मात्मा ब्राह्मण-परिवार भूख से जर्जरित होकर मृत्यु के मुख में गया। उस अतिथि ने जो अपने झूठे हाथ धोये थे, उस पानी से जो उस महात्मा का घर गीला हो गया था उसमें सौभाग्य से लोट लिया था। पर उस पुण्य जल में मेरा आधा ही शरीर भीगा—वह उतना ही स्वर्ण का हो गया। अब शेष आधे के स्वर्ण होने की कोई आशा नहीं है। आधा शरीर चर्म का लेकर ही मरना होगा।

क्षुद्र जन्तु की यह गर्वीली कथा सुन कर युधिष्ठर की गर्दन झुक गई, और अपने तामसिक कर्म तथा गर्व पर लज्जा आई।

श्री रामचन्द्र जी, पिता की आज्ञा मान कर अपना राज्याधिकार त्याग जो बन को गये, उनके इस कार्य को मैं दृढ़तापूर्वक अधर्म घोषित करता हूँ। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण श्रीराम का राज्य पर पूर्ण अधिकार था। श्रीराम आदर्श शासक भी

होने योग्य थे। दशरथ जी की आज्ञा अनुचित थी। लोग कहते हैं कि उन्होंने केकई को वर दिया था, वे वचन-बद्ध थे। मैं कहता हूँ, उन्होंने श्रीराम को वचन दिया कि तुम्हारा राजतिलक होगा और वे केकई की अपेक्षा श्रीराम के प्रति अधिक वचन-बद्ध थे। फिर श्रीराम का राज्यारोहण अत्यन्त सुखद, उत्तम, न्याय-नीति युक्ति और उचित था। यदि दो वचनों का बराबरी का ही संघर्ष था तो उन्हें राम के दिए वचन को ही पालन करना चाहिए था। मैं कह सकता हूँ कि यह झूठ बात है कि दशरथ ने केवल प्रण के कारण ही राम को बनोवास दिये। वास्तव में असल बात तो यह थी कि वह परले दर्जे के स्त्रैण और दुर्बल हृदय राजा थे—जैसे आज भी स्त्रियों के गुलाम बूढ़े रईस देख पड़ते हैं जो पुत्रों पर अत्याचार करते हैं। राम एक असाधारण धैर्यमय महा पुरुष थे। इसलिए उन्होंने वन में भी चाहे जितने कष्ट भोगे—पर यश का ही संचय किया। परन्तु यदि इतिहास को खोज कर देखा जाये तो दशरथ जैसे स्त्रियों के दास राजाओं की कमी नहीं। पूर्णमल को ऐसे ही पतित पिता ने स्त्री के वशीभूत होकर हाथ-पाँव कटवा कर कुएँ में डलवाया था। अशोक जैसे प्रियदर्शी ने अपने पुत्र कुणाल की ऐसी ही स्त्री की दासता करके आँखें निकाल ली थीं। ऐसे स्त्रैण पुरुष के बहुत उदाहरण हैं। दशरथ ने न तो अपने राज्य के अधिपति होने के उत्तरदायित्व पर विचार किया और न पिता के उत्तरदायित्व पर। उसने न केवल राम पर, प्रत्युत अपनी ज्येष्ठा पत्नी कौशिल्या

पर भी घोर अन्याय किया। बिना अपराध एक ज्येष्ठ पत्नी के ज्येष्ठ पुत्र को, जिसका अधिकार था, अधिकार च्युत करके बन भेजना और कनिष्ठा और दुष्टा पत्नी के पुत्र को अनधिकार राज्याधिकार देना, दशरथ के दुर्बल हृदय का खुला उदाहरण है जिसकी अधिक-से-अधिक निन्दा की जानी चाहिए।

मैं कहता हूँ, राम को ऐसे पिता की ऐसी आज्ञा नहीं पालन करनी चाहिए थी। उन्हें दृढ़तापूर्वक इनकार कर देना उचित था। इस स्त्रैण वृद्ध के इस कुकर्म के फल-स्वरूप फूल सी सीता को क्या क्या लांछनाएँ और विपत्तियाँ नहीं सहनी पड़ीं? और राम को जीवन-भर किन-किन मुसीबतों से न टकराना पड़ा?

लोग चिउँटियों को, कीड़े-मकोड़ों को, आटे में गुड़ या चीनी मिलाकर जिमाया करते है, और इसे धर्म समझते हैं। उधर बड़े-बड़े वैज्ञानिक और डाक्टर लोग पृथ्वी-भर से रोग के कीटाणुओं को, मक्खियों को, मच्छरों को, खटमलों को, पिस्सुओं को जड़मूल से नष्ट करने पर तुले हुए हैं। मैं पूछता हूँ इन दोनों श्रेणियों में धर्मात्मा कौन है? वे वैज्ञानिक और डाक्टर लोग या चिउँटियों को गुड़ शक्कर खिलाने वाले? बहुधा देखा जाता है कि म्यूनिसिपैलिटियाँ बन्दरों को, कुत्तों को और चूहों को पकड़ कर नष्ट किया चाहती हैं, परन्तु लोग प्रायः उसका विरोध किया करते हैं। बन्दर हिन्दुओं की दृष्टि में देवता हैं क्योंकि वे सभी अंगद और हनुमान के भतीजे

ठहरे, उन्होंने गढ़ लंका फ़तह की थी। इसलिए वे मंगलवार के दिन बन्दरों को गुड़धानी खिलाना धर्म समझते हैं। इसी प्रकार गौ उनकी माता है। यदि उनके घर में कोई असाध्य बीमार हो जाय तो उसे आटे के पिण्ड खिलाते हैं। कुत्ता भैरों जी की और चूहा गणेश जी की सवारी है, इन सबको जिमाना धर्म है, ख़ास कर काले कुत्ते को दूध पिलाना।

सर्प एक भयानक कीड़ा है, और उसका तुरन्त ही नाश कर देना उचित है। परन्तु हिंदुओं के लिए वह एक देवता है, जिसकी पूजा करना और दूध पिलाना धर्म का काम है। अब मैं जनाना चाहता हूँ कि विज्ञान, स्वास्थ्य-कला, और सामाजिक जीवन के विरोध करने वाले ये नियम क्या बिल्कुल दया के दुरुपयोग के उदाहरण नहीं हैं ?

मैं एक परिवार को जानता हूँ—इन्हें सनक सवार हुई है कि इनके घर में गड़ा हुआ धन है—और उसकी रखवाली सर्प देवता कर रहे हैं। मैंने देखा है—घर पुराना है और उसमें सर्प रहता है। वह साँप बहुधा घर में घूमा करता है, पर ये महाशय उसे मारते नहीं—दूध पिलाते हैं, देखते ही हाथ जोड़ते हैं। इन के यहाँ एक किरायेदार बुढ़िया रहती थी। दैवयोग से एक दिन सर्प से उसका स्पर्श हो गया। दूसरे ही दिन उसके पुत्र की सगाई चढ़ गई और यह सर्प देवता का प्रसाद समझा गया।

यही नहीं, और भी बहुत से कीड़े-मकोड़े और जीव जंतु इसी भाँति पूजे जाते हैं। अब इन धर्म के अंधों में और

वैज्ञानिकों में एक-न एक दिन गहरी ठनेगी ही ।

मेरे कहने का यह अभिप्राय है कि किसी भी कार्य या विचार की अच्छाई और बुराई उसके सदुपयोग और दुरुपयोग में है। बुराइयों का सदुपयोग धर्म हो सकता है, और भलाइयों का दुरुपयोग अधर्म। परन्तु बुराइयों का दुरुपयोग तो सदैव ही पातक और अधर्म है। यह पातक किस भाँति मनुष्य को गले तक ले डूबा है, इसका वर्णन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

(३)

अन्धविश्वास और कुसंस्कार

अन्ध-विश्वास धर्म की जान है, उस धर्म की, जो पाखण्ड की भित्ति पर है, और जिसे आज लोग धर्म मानते हैं। इसी अन्ध-विश्वास के आधार पर लोगों ने अत्यन्त भयानक कार्य किये हैं। अन्ध-विश्वास का दास कभी सत्य के तत्व को तो खोज ही नहीं पाता। यह बात आम तौर पर प्रसिद्ध है कि धर्म के काम में अक्ल को दखल नहीं है। अन्ध-विश्वास के कारण धर्म नीति से फिसल कर रीति पर आ गिरा है; अब वह रूढ़ियों का दास है। जब मैं बड़े-बड़े सुयोग्य विद्वानों को अन्ध-विश्वास के आधार पर अवैज्ञानिक और युक्ति हीन बातें करते पाता हूँ तो चित्त को क्लेश होता है। कुसंस्कार अन्ध-विश्वास का पुत्र है। जो अन्ध-विश्वासी हैं—उनमें कुसंस्कार की भावना भी है ही। आज महामना मनीषिवर मालवीय जैसे प्रकाण्ड राजनीति और समाज तथा अर्थशास्त्र के दिग्गज मेधावी पुरुष पत्थर की मूर्तियों को परमेश्वर के समान पूजते

हैं। यह अन्ध-विश्वास-जन्य पीढ़ियों के कुसंस्कार का फल है। मुहम्मदअली और डाक्टर अन्सारी जैसे दिग्गज वाग्मी और राजनीतिज्ञ; अजमलखाँ जैसे विचारशील पुरुष भी यह घोषणा न कर सके कि फरिश्तों की गप्पें मानने के योग्य नहीं। वे अन्त तक कुरान-शरीफ़ को ईश्वर-वाक्य और फरिश्तों द्वारा मुहम्मद साहेब पर उसकी 'वही' आना मानते रहे हैं। बहिश्त और दोजख़ में भी उनका पूरा विश्वास है और उनकी आत्मा क़ब्र में प्रलय तक अपने कर्मों के फल की प्रतीक्षा में चुप-चाप पड़ी रहेगी—यह भी उन्हें विश्वास रहा। आज ईसाई-संसार ने पृथ्वी के उच्चकोटि के वैज्ञानिक पैदा किये, पर उनके वे अन्ध-विश्वास वैसे ही बने हुए हैं। एक ईसाई लड़के ने एक बार पृथ्वी कैसी है—इसके उत्तर में कहा—स्कूल में गोल और गिरजे में चपटी।

धर्म का आधार वास्तव में मनुष्य की भलाई बुराई के विचार पर ही है, और वे विचार भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों की स्थिति के अनुसार अनेक भांति के होंगे, इसलिये उन विचारों का आधार मूल प्रकृति पर नहीं, प्रत्युत शिक्षा के आधार पर होना चाहिये।

अब मैं यहाँ योरुप के धर्म विकास और ह्रास पर एक दृष्टि डालूँगा और फिर भारतीय धर्म विकास पर विचार करूँगा।

बहुत प्राचीन मौखिक कथाओं के आधार पर, जिन्हें प्राचीन

धार्मिक गण सत्य मानते थे—भूमध्य सागर के द्वीपों और उनके निकट के देशों को दैव आश्चर्यों, अर्थात् जादूगरों, भूतों, राक्षसों, पङ्खदार राक्षसों, भयङ्कर रूपधारियों, पङ्खदार नरसिंहों और क्रूरकर्मा दैत्यों से भर दिया था। नीला आकाश स्वर्ग था, जहाँ जीऊस, देवताओं से घिरा—मनुष्यों की ही भांति सभा किया करता था।

जब यूनान में जागृति पैदा हुई, और उन्हें नवीन बस्तियाँ बसाने और भौगोलिक अन्वेषण के चाव उत्पन्न हुए, और उन्होंने कृष्ण सागर और भूमध्य सागर में खूब चक्कर काटे—तब उन्हें पता लगा कि वे सारी अद्भुत आश्चर्य की कहानियां जो उनकी अति प्रतिष्ठित पुस्त 'आडिसी' में वर्णित हैं, वास्तव में कुछ हैं ही नहीं। वे यह भी समझ गए कि आकाश वास्तव में एक धोखा है और वहाँ कोई भी देवता नहीं रहता। इस प्रकार प्रसिद्ध होमर के सब यूनानी और हींसियड के डोरिक देवता ग़ायब हो गए। प्रारम्भ में उन्होंने साहस पूर्वक जनता में इस अन्ध विश्वास के विरुद्ध आवाज़ उठाई, उनका खूब कड़ा विरोध किया गया। उन्हें नास्तिक कहा गया और उनमें से अनेकों को प्राण-दण्ड और देश निकाला मिला, और उनकी सम्पत्ति लूट ली गई। इस अन्ध-धर्म-विश्वास के नाश में यूनानी तत्त्ववेत्ताओं ने बहुत सहायता दी और कवियों ने उनका खूब करारा अनुमोदन किया। एथेंस में देवी-देवताओं के अस्तित्व पर विचार करते-करते कुछ ऐसे मनुष्य भी हो गए

जो संसार को भी मिथ्या और कल्पना मानते थे।

यूनानी लोग सदैव ही गृह-युद्ध में लगे रहे, परन्तु जब यूनान ने अन्ध-विश्वास से मुक्त होकर फ़ारस की अधीनता से इनकार कर दिया तो बड़ी खलबली फैल गई, क्योंकि उस समय फ़ारस का साम्राज्य वर्तमान समस्त यूरोप के विस्तार से आधा था और वह राज्य भूमध्यसागर, ईजियम सागर, कृष्ण सागर, केस्पियन सागर, इण्डियन सागर, फ़ारस सागर, और लाल सागर के किनारों तक फैला था। उस राज्य में दुनिया के ६ बड़े नद बहते थे—जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई एक हज़ार मील से कम न थी। उसके राज्य की भूमि की सतह समुद्र की सतह से १३०० फ़ीट नीचे से लेकर २०,००० फुट तक ऊँची थी। इस कारण वह महाराज्य धन-धान्य कृषि से भरपूर था। उसका खनिज द्रव्य भी अतुल था। वहाँ के बादशाह को नीडियन राज्य, असीरियन राज्य और कैलडियन राज्य के विशेषाधिकार विरासत में मिले थे, जिनके इतिहास दो हज़ार वर्ष पीछे तक का ठीक पता देते थे।

ऐसे ही समय सिकन्दर का जन्म हुआ। वह एक साधारण राज्य के अधिपति का पुत्र था। पहिले ही धावे में उसने थीव्स को जीतकर वहां के ६ हज़ार निवासियों को मरवा डाला और ३० हज़ार को गुलाम बनाकर बेच डाला। इससे उसकी धाक बँध गई। फिर वह एशिया की ओर बढ़ा। उसके साथ ३४ हज़ार पैदल, ४ हज़ार सवार और ७० तोपें

थीं। उसने फ़ारस की असंख्य सेना पर आक्रमण किया और एशिया माइनर पर दख़ल कर लिया। वहाँ का अटूट खज़ाना भी उसके हाथ लगा। फ़ारस शाह दारा ६ लाख फौज़ लेकर सामने आया पर वह हारा और उसके १ लाख सिपाही खेत रहे। इस प्रकार वह एशिया को फ़तह कर भूमध्य सागर की ओर बढ़ा। रास्ते के सब राज्य उसने विजय कर लिये, और समुद्र के सम्पूर्ण तट स्वाधीन कर लिये। मिश्र भी उसने जीत लिया। सिकन्दर भी अन्ध-विश्वास का दास था। यहाँ से वह जूपिटर-एमन के दर्शनों को गया, जो वहाँ से दो सौ मील दूर लीबिया के बालुये मैदान में था। वहां के देवता ने उसे देवता का पुत्र बताया जिसने सर्प के वेष में उसकी माता को धोखा दिया था। निर्दोष गर्भ-धारण और देवी-देवताओं की प्रथा उन दिनों ऐसी प्रबल थी कि जो असाधारण काम करता था, अवतार समझा जाता था। यहाँ तक कि रोम, में कई शताब्दियों तक कोई यह कहने का साहस नहीं कर सकता था कि उस नगर के स्थापक 'रोम्युलस' की उत्पत्ति मंगल और रासिलविया के अचानक संयोग से नहीं हुई है। प्लेटो जैसे तत्व-दर्शी के चेले उन सब लोगों से नाराज़ होते थे जो प्लेटो को अपोला देवता के निर्दोष गर्भ से उसकी माता की कुमारी अवस्था में उत्पन्न होना स्वीकार नहीं करते थे। जब सिकन्दर अपने आज्ञा-पत्रों और घोषणाओं में अपने को 'सिकन्दर वल्द जूपीटर एमन' लिखकर प्रकाशित करता तो एशिया के निवा-

सियों पर उसका ऐसा प्रभाव पड़ता कि वे उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते थे। उसकी माता हँसी में बहुधा कहा करती थी कि सिकन्दर मुझे जूपीटर की जोरू न बनाया करे तो अच्छा है।

परन्तु सिकन्दर ने अपनी अल्पावस्था में ही जो कार्य किए वे कम आश्चर्यजनक न थे। हेलेस्पोर्ट को पार करना, मेनीकिस जबर्दस्ती ले लेना, विजित एशिया माइनर का राजनैतिक प्रबंध करते हुए शीतकाल व्यतीत करना, दक्षिण और केन्द्रस्थ भाग को सेना का भूमध्य सागर के किनारे-किनारे सफर करना, टायर के घेरे में बहुत सी शिल्प-सम्बन्धी कठिनाइयों का निवारण करना, गाजानगर को तोपों से उड़ा देना, फारस का यूनान से पृथक् हो जाना, भूमध्य सागर से फारस की जल-सेना को बिलकुल निकाल देना, फारस के उन उद्योगों को रोक दिया जाना, जिनसे वह एथेन्स-निवासियों और स्पार्टा के निवासियों से मिलकर षड्यंत्र रचता था या रिश्वत देता था, मिश्र को आधीन कर लेना, कृष्ण सागर की सम्पूर्ण सेनाओं का मेसोपोटेमिया के रेतीले मैदानों की ओर एकाभिमुख होना, थलेक्स के टूटे पुल पर से लम्बे बेतों से पूर्ण किनारे वाली फ्रात नदी को ससैन्य पार कर लेना, हिगरिस नदी को पार करना, अरबेला के बड़े और महत्त्वपूर्ण युद्ध और पहली रात में युद्ध क्षेत्र का निरीक्षण करना, फिर ठीक युद्ध के समय तिरछी चाल चलना, और शत्रु के मध्य भाग को छेद जाना, दाराको

विजय करना—ये सब ऐसे अलौकिक काम थे कि उस समय तक किसी सैनिक ने नहीं किये थे।

इन उदाहरणों से आप देखेंगे कि यूनान को अन्ध विश्वासों के दूर होने पर बहुत-सी चुस्ती प्राप्त हुई। इस बड़े विजेता के साथ यूनानियों ने डेन्यूब से गङ्गा तक का सफर किया, कृष्ण सागर के उस पार वाले देशों के उत्तरी वायु के झोंके खाये। मिश्र की 'बादे समूम' के थपेड़ सहे, मिश्र के वे मीनार, देखे, जो दो-हज़ार वर्षों से खड़े थे। लक्सर क गूढ़ाक्षर बलित स्तम्भ और भेदपूर्ण स्त्रीमुख और सिंह शरीर दानवों की कुञ्ज देखी और उन महाराजों की विशाल मूर्तियाँ भी देखीं जिन्होंने संसार के आदि भाग में राज्य किया था। बैबीलोन का वह नगरकोट भी तब शेष था जिसका घेरा ६० मील से अधिक था और तीन शताब्दियों से विदेशियों के उपद्रव सहकर भी अभी तक ८० फीट से अधिक ऊँचा था। उन्होंने वह आकाशचुम्बी 'बेल' के मन्दिर का भग्न अंश भी देखा—जिसकी चोटी पर वेधशाला थी, जहाँ से इन्द्रजाली कैलडियन ज्योतिषी रात को नक्षत्रों से बात-चीत किया करता था। उन्होंने आकाश में लटकते हुए बाग़ भी देखे थे और उस पानी की कल का भी टूटा भाग देखा था जो नदी से उन वृक्षों तक पानी पहुंचाता था। उन्होंने उस असाधारण कृत्रिम झील को भी देखा जिसमें आरर्मिनिया के पहाड़ों का बर्फ पिघल-पिघल कर आता था, और फ्रात नदी के बँधान से रुक कर सारे शहर में बहता था।

इन सब दिग्दर्शनों ने उन मेधावी पुरुषों के मस्तिष्क में वह शक्ति उत्पन्न की, जिसके कारण इन्होंने आगे चलकर अलग्जेण्ड्रिया में गणित और व्यावहारिक विद्या की पाठ-शालायें खोलीं और यूनान ज्ञान का केन्द्र हो गया।

सिन्धु नदी को पार करके सिकन्दर का भारत में घुस आना धार्मिक दृष्टि से दोनों प्राचीन जातियों के विचार-विनिमय का एक ज़बर्दस्त कारण हो गया। भारत ने भयानक कष्ट देने वाले देवताओं को उन लोगों से पहचाना और तन्त्र ग्रन्थों की सृष्टि की। आगे चलकर तान्त्रिकों के उपद्रव देश भर में फैल गये। प्राचीन भारतीय देवताओं और आत्मवाद की छाया यूनान में अरस्तू ले गया, जिससे यूनान में तत्त्वदर्शन की बड़ी भारी उन्नति हुई और रोमन सभ्यता में भी उसका बड़ा भारी स्थान रहा।

परन्तु भारतवर्ष में तान्त्रिक लोगों ने अन्ध-विश्वास की जड़ें पाताल तक फैला दीं। कापालिक लोग उस समय दर-बदर फिरा करते थे, और मरघट में वे कुत्सित-जीवन व्यतीत करते तथा उन्हें लोग अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न आदमी समझते थे। पृथ्वीराज–रासो में ऐसे तान्त्रिकों का और उनके दर-बदर फिरने का बहुत जिक्र है।

परन्तु अन्ध-विश्वासों को सबसे बड़ा सहारा योग के चमत्कार से मिला। आज भी लाखों मनुष्य योग की विभूतियों पर भारी श्रद्धा करते हैं। मैं दृढता पूर्वक कहता हूँ कि योग की

विभूतियाँ और सिद्धियाँ बिलकुल असाध्य और अव्यवहार्य हैं, और मैं विश्वास नहीं करता कि कभी भी पृथ्वी पर कोई ऐसा मनुष्य हुआ होगा कि जो उन विभूतियों से जानकार होगा। मनुष्य का मच्छर हो जाना, या पर्वताकार हो जाना, लोप हो जाना, आकाश में उड़ना, दूसरी योनियों में चला जाना, मर कर भी जी उठना— बिल्कुल गप्प, झूठ, असम्भव और ढकोसला है।

यहाँ योगशास्त्र पर मैं और भी गम्भीर दृष्टि डालूंगा। प्रथम तो यह विचारना चाहिए कि योग-शास्त्र का निर्माता पतञ्जलि ऋषि कोई अति-प्रसिद्ध बड़ा भारी ऋषि नहीं। उसका जन्म पाणिनी के पीछे का है, क्योंकि उसने पाणिनी की अष्टाध्यायी पर महाभाष्य रचा है! पाणिनी का जन्म काल मसीह से ३०० वर्ष पूर्व के लग-भग है। यह वह समय था जब देश के धर्म में अन्धकार की भावना फैल गई थी, और ब्राह्मणों का देश में ज़ोर था। बड़े बड़े यज्ञ होते थे। अनुष्ठानों और क्रियाओं का बड़ा महत्व था। यूनानी लोगों का भारत में नया संस्पर्श हुआ था, और उनसे भारतीयों ने अद्‌भुत, और विचित्र देवताओं, घटनाओं और आश्चर्य की बातें सुनी थीं। पतञ्जलि ने इन सबको हृदयङ्गम किया और योग-दर्शन लिखा। पतञ्जलि स्वयं योग का ज्ञाता था और उसे वे सारी सिद्धियाँ आती थीं— इसका कुछ भी प्रमाण देखने को नहीं मिलता। न इस बात का ही कोई प्रमाण हमें देखने को मिलता है कि पतञ्जलि से

पूर्व किसी भी ऋषि ने इस प्रकार की सिद्धियों की चर्चा की हो, या उन्हें सम्भव माना हो । वास्तव में वह एक रहस्य पूर्ण ढङ्ग से लिखी हुई एक और ही उद्देश्य की पूर्ति की पुस्तक है। उसका उद्देश्य केवल सांख्य के बुद्धिगम्य ऋषियों को अनुभवित ढङ्ग से व्यक्त करना ही था, जो वास्तव में चमत्कारिक तो था, पर व्यवहारिक नहीं था ।

इस योग-दर्शन के निर्माण के बाद पैशाची भाषा के कुछ ग्रन्थों में, जिनका मूल उद्गम भी मध्य एशिया की जातियों के संसर्ग से था—बड़ा प्रभाव पड़ा। पुराणों में जो असंख्य बुद्धि-विपरीत बातें देखने को मिलती हैं—वे सब इसी की बदौलत गढ़ी गई हैं, और योग, तन्त्र-मन्त्र, जादू टोने की बदौलत आज भी लाखों लोग पेट भर रहे हैं। दो-चार उदाहरण नीचे दिये जाते हैं ।

एक बार मैं रुग्ण हो गया था। रक्त की बहुत कमी हो गई थी और अनिन्द्र रोग भी था। उन्हीं दिनों एक योगीराज दिल्ली आए हुए थे। उनकी बड़ी धूम थी। वे सूर्य पर बदली ला देते हैं, अदृश्य हो जाते हैं, और देखते-देखते बालरूप धारण कर लेते हैं तथा और भी अद्भुत क्रियाएँ जानते हैं, यह बात अख़बारों तक में छप गई थीं। मेरे एक मित्र उन्हें मेरे पास पकड़ लाए—उनका कहना था कि योगीराज दृष्टिमात्र से ही मुझे आरोग्य कर देंगे। नगर के दो प्रतिष्ठित बैरिष्टर और एक डाक्टर साहेब सदैव ही योगिराज के साथ घूमते थे। योगिराज

को देखते ही मैं तुरन्त पहचान गया। वह महाविद्यालय ज्वालापुर का एक चलता पुर्ज़ा विद्यार्थी था; परन्तु मैंने ऐसा भाव दिखाया मानो मैंने उन्हें बिलकुल नहीं पहचाना। वे बड़ी गम्भीरता से बैठ गए। मूछें मुण्डी हुई, घुँघराले बाल लहराते हुए, माँग निकली हुई, बढ़िया तंजेब का कुरता और पीतल की पच्चीकारी के काम की खड़ाऊँ पहिने, रेशमी धोती लपेटे हुए, पान कचरते हुए वे कुर्सी पर डटे हुए थे।

मैंने कहा—"महाराज, कहाँ से पधारना हुआ ?"

"हम मान-सरोवर में ध्यानस्थ थे।"

"कितने वर्षों से ?"

"बहुत काल से, लगभग २५ वर्ष हुए होंगे, अधिक भी हो सकता है!"

"आपकी आयु क्या है ?"

"आप क्या अनुमान करते हैं ?"

"यही २०, २५ वर्ष।"

योगीराज ज़ोर से हँसकर बोले—"हम १०० के पेटे में हैं। परन्तु अभी तो हमारी किशोरावस्था ही है। पूर्ण युवा नहीं हुए हैं।"

मैंने मन की हँसी दबाकर कहा—"आप बालों में तेल कौन-सा डालते हैं ?"

"हमने पचासों वर्षों से तेल नहीं डाला। बाल स्वयं शरीर से चिकनाई खींच लेते हैं।"

इसके बाद उन्होंने अँग्रेज़ी मिश्रित हिन्दी में बीच-बीच में एकाध टुकड़ा श्लोक बोलते हुए योग की व्याख्या और चमत्कार कैसे प्राप्त किए जाते हैं—इसका विवेचन करना शुरू किया। अन्त में दृष्टिमात्र से मेरा रोग अच्छा कर देने का वचन भी दिया, परन्तु दृष्टि में बल लाने को साधना करनी होगी। क्योंकि कई सिद्धियाँ दिखाने के कारण उनका बल ख़र्च हो गया था।

बहुत-सी बातें सुनकर अन्त में मैंने हँस कर कहा—"ख़ैर, यह तो हुआ। अब आप यह तो कहिये, आपकी माताजी प्रसन्न हैं? और बहनों का विवाह हुआ या नहीं?"

योगीराज एक दम आकाश से गिरे। बोले—"क्या आपका हमारा कुछ और भी परिचय है?"

मैंने कहा—"यार, क्यों पाखण्ड करते हो? अभी पं० भीमसेन जी के डण्डों के निशान पीठ पर होंगे।" सुनते ही हँस पड़े, लिपट गये। सब रोना रोया। माता जी मर गईं। एक बहन विवाह दी। दूसरी के विवाह की चिन्ता है। रुपये की फ़िकर है। आदि आदि।

अन्ध-विश्वास के द्वारा बच्चों में भूत-प्रेत के कुसंस्कार भी जमा दिये जाते हैं, और वे सदैव डरपोक बने रहते हैं। एक वीर, जो तोपों की गर्जना और बरसती गोलियों में निर्भय खड़े रहते थे और सेना के उच्च-पदस्थ थे, रात को पेशाब करने जब उठते तो किसी सेवक को जगा कर साथ ले लेते थे।

एक पागल हमें देखने को मिला जो मौनी बाबा के नाम से

प्रसिद्ध था। यह व्यक्ति एक बार किसी मंत्र को जगाने मरघट में गया था। वहाँ धरती में एक कील ठोंकी। दैवयोग से वह कील उसके अंगरखे के पल्ले के साथ गड़ गई। जब उठ कर चलने लगा, पल्ला कील में अटक हो रहा था। बस चिल्ला उठे। समझे, भूत ने पकड़ लिया। बेतहाशा भागे। तब से मस्तिष्क में ऐसा विकार आया कि चुप हो गये। २५ वर्ष तक उसी दशा में रह कर मर गये। हमने उन्हें देखा था। यह दशा थी—जहां खड़ा कर दो जड़वत् खड़े रहते थे, और जिधर उनका कोई अङ्ग करदो वैसा ही बना रहता। बहुधा लोग उनके मुँह में लड्डू दे देते। वह घण्टों वैसा ही धरा रहता था। लोग उन्हें सिद्ध समझ कर पूजा करते थे।

अन्ध विश्वास और कुसंस्कारों ने ही करोड़ों हिन्दुओं को मूर्ति पूजा के कुकर्म में फाँस रक्खा है। पढ़-लिखकर भी, समझदार होकर भी वे उससे विमुख नहीं हो सकते। बहुत लोग स्वप्नों पर बड़ा विचार किया करते हैं। अमुक स्वप्न देखने से अमुक फल होगा। एक बार राजा जमोरिन ने एक स्वप्न देखा कि चन्द्रमा के दो टुकड़े हो गये हैं। राजा ने उसका अर्थ दरबारियों से पूछा, परन्तु वे ठीक ठीक उत्तर न दे सके। उन्हीं दिनों कोई अरब के व्यापारी वहाँ आये थे। राजा ने उनसे भी स्वप्न का हाल कहा—उसने अंट संट बता दिया। राजा मुसलमान होगया और उसके वंशधर आज भी मोपला मुसलमान हैं।

स्वप्नों की चर्चा महाभारत, भागवत, पुराण आदि में बहुत है। कुछ ऐसी कथायें भी हैं कि स्वप्न में देखी स्त्रियों से और स्थानों से जागृत होकर भी कुछ राज्य मिल सके हैं। वीर विक्रमादित्य की कहानियों में इस प्रकार की बातों का खूब उल्लेख है। फलतः पढ़ने वालों पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

शकुन भी अन्ध-विश्वास की खास चीज है। मुगल बादशाहों तक को शकुन देखने का खब्त सवार था। वे बिना शकुन मुहूर्त दिखाये कोई काम करते ही न थे।

बिल्ली का रास्ता काट जाना, कौवे का बोलना, काने आदमी का सामने मिलना, गीदड़ का रोना, खाली घड़े लेकर किसी स्त्री का सामने आना, किसी का छींकना ये सब अशुभ बातें मानी जाती हैं। कुछ लोग तो इतने अन्ध-विश्वासी होते हैं कि वे इस कदर भयभीत हो जाते हैं कि बहुधा उनके प्राण निकल जाते हैं।

इसी प्रकार की एक मजेदार घटना है कि किसी देहाती लाला को किसी देहाती ज्योतिषी ने कह दिया कि जिस दिन तुम्हारे मुंह से खून निकलेगा तुम मर जाओगे। एक दिन लाल रङ्ग का डोरा उनके मुंह में कहीं से लिपट गया। उसे देखते ही वह भयभीत होकर समझ बैठा कि मृत्यु आगई। वह दूकान बन्द करके घर आया। घर दूर था, और गर्मी का मौसम था, पसीने से तर हो गया। स्त्री से कहा—जल्द खाट बिछादे और लड़के को स्कूल से बुलाले—मेरा आखीर वक्त आगया है। स्त्री

ने शरीर देखा ठंडा बर्फ हो रहा था—उसने रोकर कहा—अरे तुम तो बिल्कुल ठंडे हो रहे हो। अब उसे और भी मृत्यु पर विश्वास हो गया। वह जल्दी-जल्दी साँस लेने और लेन-देन का हिसाब बताने लगा।

लड़का समझदार था स्कूल से आया और देखकर बोला, पिताजी, आप में मरने के कोई लक्षण नहीं। आप कैसे मरते है। उसने कहा—हमारे मुंह से आज खून निकला या नहीं ? लड़के ने देख कर कहा—कहां ? यह तो लाल धागा दांतों से लिपट रहा है।

यह सुनते ही लाला खुशी से उछल पड़े। बेटे को छाती से लगा लिया और कहा—बस, इसीने इस वक्त जान बचाई है। इसके बाद खाना खाकर फिर दूकान पर जा डटे।

इस अन्ध-विश्वास के चक्कर में फँस कर हमने बहुत कष्ट झेले हैं। परन्तु कहीं भी कुछ परिणाम देखने को नहीं मिला। एक बार एक व्यक्ति के कहने से २१ दिन अन्न-जल त्याग अखंड-जप दुर्गा का किया। उस व्यक्ति ने कहा था, साक्षात दुर्गा दर्शन देगी। पर दुर्गा की दासी ने भी दर्शन नहीं दिये। एक बार कंठ तक जल में कठोर शीत ऋतु में लगातार ४-५ घंटे प्रति-दिन तीन मास तक खड़े रह कर मृत्युञ्जय और गायत्री का जप किया, परन्तु हमें उससे कुछ भी सिद्धि न प्राप्त हुई। और भी बहुत से कष्ट-साध्य और अद्भुत अनुष्ठान हमने किये और हम दावे से कह सकते हैं, ये सभी झूठे और पाखंडपूर्ण निकले।

हाल ही में मेरे एक मित्र हैदराबाद दक्षिण से आये। दो दिन बाद ही उनके घर से जल्द आने का तार आ गया। वे अपने नवजात शिशु को रोगी छोड़ आये थे । उसी की चिन्ता ने घर घेरा। बार बार उसी बच्चे की अशुभ कल्पना उनके मन में उठने लगी । तार देकर पूछा कि क्या हाल है, पर जवाब का सब्र न था। एक नामी ज्योतिषी के पास गए, ग्रह दशा दिखाई और उन्होंने रङ्ग ढङ्ग देख पितलाया सा मुंह बनाकर कहा—बच्चे पर घोर संकट है, छाती में कफ का रोग है, १३ तारीख तक बुरी दशा है। बचना कठिन है। उस समाचार को संशोधन करके उन्होंने मुझे सुनाया कि उसे डबल निमोनिया हो गया है। विवश उन्हें विदा किया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने लिखा—बच्चे को देखने की आशा न थी, भूखा प्यासा स्टेशन पर उतरा, पागल की भांति तांगे में बैठकर घर पहुँचा, देखता क्या हूँ छोटे साहब माता की छाती से लगे दूध पी रहे है। देखते ही दोनों हाथ उठा कर हँस पड़े। अब दिल को तसल्ली हुई। चले आने का अफसोस है।

कहिये ! इस अंधविश्वास और कुसंस्कार का भी कुछ ठिकाना है। सारी पृथ्वी की जातियों में एक से एक बढ़कर कुसंस्कार फैले हुए हैं, और विज्ञान अभी तक उन्हें दूर करने में असमर्थ है।

(४)

अत्याचार

अन्ध विश्वास के साथ क्रोध का खूब दोस्ताना है। क्योंकि जो आदमी अन्ध-विश्वासी हैं उनके पास युक्तियां नहीं। वे अपनी दुर्बलता को क्रोध से छिपाते हैं। उमर जो मुसलमानों का तीसरा खलीफ़ा था एक आदर्श अन्ध-विश्वासी मुसलमान था। जो कोई भी उससे उसके धर्म में तर्क करता—उसका जवाब वह तलवार से देता था। वह एक भारी डील डौल का आदमी था। उसका शरीर काला, आँखें लाल, और सिर बिल्कुल सफाचट था। वह सदा एक चमड़े का कोड़ा अपने पास रखता था और उससे बदमाशों कौर मुसलमानी धर्म की निन्दा करने वाले कवियों की मरम्मत किया करता था। एक बार वह जब युद्ध करने ईसाइयों के किसी नगर पर गया था तो ईसाइयों ने उससे कुछ धर्म सम्बन्धी प्रश्न पूछे। इस पर उसने तलवार निकाल कर कहा—मेरा उत्तर सिर्फ यह तलवार है।

धार्मिक अत्याचारों को मेरे विचार में ईसाइयों ने सबसे अधिक धैर्य और साहस के साथ सहन किया है। ईसाइयों पर

अत्याचार के पहाड़ टूट पड़े थे। सर्व-प्रथम तो ईसा की मृत्यु के बाद यहूदियों ने और नीरो बादशाह ने उन्हें बड़े-बड़े कष्ट दिये। इसके बाद जब प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय चला तब पोपों ने उन्हें भयानक कष्ट दिये। यहाँ पाठकों की जानकारी के लिये हम उन अत्याचारों का संक्षेप में वर्णन करते हैं।

ईसाइयों के चरणों में आज आधी दुनिया है। इनके समय में बड़े विद्वतापूर्ण तात्विक लेखक नहीं थे। मसीह के पास न तलवार थी, न विद्या थी, केवल एक आत्मबल था। उनका उपदेश प्रेम का था। कहते थे कि एक परमेश्वर ही सर्वोपरि है। उस ज़माने में मूर्ति-पूजा का प्राबल्य था। पर मसीह ने शान्तिपूर्वक प्रचार किया कि यह पत्थर की प्रतिमायें कदापि ईश्वर नहीं है। राजा और प्रजा के विरुद्ध यह आवाज़ थी। हज़ारों वर्ष के अन्ध विश्वास के विरुद्ध यह घोषणा थी। इसके बदले में मसीह को अनेक कष्ट दिये गये, उसे पापी और विधर्मी कहकर तिरस्कृत किया गया, पर वह शान्ति, धर्म और सत्य की मूर्ति था। उसने अलौकिक धैर्य के साथ अत्याचार का मुक़ाबिला किया। उसे तख्तों पर लटका कर उसके हाथ पाँवों में लोहे के कीले ठोक दिये गये और वह भगवान् से उन अत्याचारों के लिये क्षमा माँगता हुआ शान्तिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसने केवल ढाई वर्ष उपदेश किया।

मसीह के बाद पावाल ने ईसाई मत का प्रचार किया। इसे भी आश्चर्यजनक संकट सहने पड़े। पाँच बार यहूदियों की

रीति से और तीन बार रोमनों की रीति से उसने कोड़े खाये। एक रात-दिन वह समुद्र में रहा और अन्त में मसीह धर्म पर विश्वास के अपराध पर मारा गया। इस धीरजवान् पुरुष ने मसीह धर्म का प्रचार बड़ी निर्भीकता और अदम्य उत्साह से किया, और बड़े धैर्य और सहिष्णुता से सब कष्टों का सामना किया। उसने एशिया, यूनान, फिलिप्पी, थिसलिनी. किरिंथ, इफीस और मिलित नगरों में प्रचार किया और बहुत से शिष्य बनाये। अन्त में जेरुसलेम में फिर पकड़ा गया और दो वर्ष कैसरिया नगर में क़ैद रख कर रोम को भेज दिया गया।

उन दिनों रोम नगर संसार के बढ़े-चढ़े नगरों में एक था। संसार भर के भाषा भाषी व्यापारी रोम के बाज़ारों में चलते थे। मानों वह एक स्वयं छोटा-सा जगत था। इसका विस्तार बहुत अधिक था और यह सात पहाड़ों पर बसा था। इसमें ३० लाख आदमी रहते थे। एक हज़ार सात-सौ अस्सी सरकारी इमारतें थीं। देवताओं के चार सौ से अधिक मन्दिर थे, जिनमें केपिटोल नामक यूपिटर देवता का मन्दिर जो कपिटोली नामक पहाड़ी पर बना था, बड़ा विशाल था और इसके ऐश्वर्य की बड़ी प्रसिद्धि थी। उसकी लागत एक करोड़ रुपये कूती जाती थी। रोम के बादशाह ने इस महानगरी में भयंकर आग लगा दी और दोष मसीही प्रचारकों पर लगा दिया। निदान प्रजा ने उनका बड़ी निर्दयता से बध करना शुरू किया। इसी धर्म-युद्ध में पावल के प्राण गये।

याकूब मसीहा का भाई था और जेरूसेलम में मसीही धर्म का प्रचारक था। रोम के उपद्रव के समय ही उस पर कोप पड़ा। वह जब न्यायालय में पेश किया गया तो उसने वीरतापूर्वक कहा- "यीसू क्रीष्ट परमेश्वर के दाहिने हाथ बैठा है और आकाश के मेघों पर चढ़कर फिर आवेगा।" इस बात पर उसे पत्थरों से हलाल करने का दण्ड दिया गया। पत्थरों की झड़ी जब उस पर पड़ने लगी तब उसने तनिक अवसर पाकर पुकार कर कहा—'हे पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कहते हैं।' तभी एक सोटे की भारी चोट खाकर वह गिर गया।

शिमियोन जेरूसेलम का धर्माध्यक्ष था। जब यह पकड़ा गया तब १२० बरस का था। उसने कितने ही दिन कोड़े खाये पर वह न मरा। अन्त में तंग हो हत्यारों ने उसे क्रास पर चढ़ा दिया।

इग्नाट्रिथ ट्राजन अन्तैखिया नगर का मंडलाध्यक्ष था। शिमियोन के ३ वर्ष बाद ईसाई होने के अपराध में प्राणघात करने को रोम नगर में पहुँचाया गया। उसने रोम के अधिकारियों को चिट्ठी लिखकर कहलाया—'सूरिया से रोम तक मैं जंगली पशुओं से लड़ता चला आता हूँ। मैं दस योद्धाओं के साथ जंजीर से कसा हुआ चलता हूँ। और मैं जैसे नित्य उनकी भलाई करता हूँ वैसे मेरे विरुद्ध उनका कोप बढ़ता है। वे चाहें तो मुझे सिंहों के आगे फेंकें, चाहे क्रास पर चढ़ावें, चाहे

मेरे अंग को काटें, यदि मैं प्रभु के नाम पर आनन्दित हूँ तो उन पीड़ाओं से क्या होगा ?'

रोम में पहुँचाने पर वह लोगों के सामने ही अजायबघर के जंगली पशुओं के सामने डाला गया। जब उसने सिंहों को गर्जते हुए सुना तो कहा कि 'मैं प्रभु मसीह का फटका हुआ गेहूँ हूँ, जब तक जंगली पशुओं के दाँत से न पीसा जाऊँ तब तक रोटी न बनूँगा।' सिंह ने झटपट उसे फाड़ डाला। उसके बाद उसकी थोड़ी सी हड्डियाँ जो बचीं वे अंतैखिया में गाड़ दी गईं।

प्लूकार्प स्मर्ना नगर का सन् १६७ में मंडलाध्यक्ष था और योहन प्रेरित का शिष्य था। इसे ईसाई होने के अपराध में जीते जलाये जाने की आज्ञा हुई। तब इसकी उम्र ८० वर्ष की थी। लोगों ने दया करके उसे समझाया कि अपना विश्वास त्याग दो। उसने कहा—'मैंने चार कोड़ी छै वर्ष, प्रभु मसीह की सेवा की है, और उसने कभी मेरा अपराध नहीं किया, तो जिस ने मोल देकर मुझे निसतार दिया है, मैं क्योंकर उसका विश्वासघाती बनूँ ?' जब वह ईंधन के निकट खड़ा हो प्रार्थना कर चुका, तब आग सुलगाई गई। बड़ी-बड़ी लपटें उठीं पर आश्चर्य कि वह जला नहीं। पीछे तीर से वेधकर मारा और उसकी लाश आग में फेंक दी गई।

ब्लाडीना दासी सुकुमार और दुर्बल थी। इसाइयों को भय था कि वह कष्ट पाकर अवश्य विचलित हो जायगी। पर जब उस पर प्रातःकाल से लेकर संध्या तक मार पड़ी, यहाँ तक कि

उसकी चमड़ी के धुर्रे उड़ गये, शरीर ऐंठकर कमान हो गया और जगह जगह से ऐसा क्षत विक्षत हो गया कि हत्यारों को उसके जीते रहने पर आश्चर्य होता था। पर वह अन्तिम साँस तक कहती गई कि 'मैं ईसाई हूँ।' अन्त में उसे हाथ फैलाकर एक खंभे से बाँध दिया और पशु छोड़ दिये कि फाड़ डालें, पर पशु उसे सूँघकर चले गये। कदाचित् उन्हें दया आ गई हो। तब उसे अगले दिन के लिए रख छोड़ा गया। दूसरे दिन जब वह फिर बुलाई गई तो आनन्द से क़दम बढ़ाकर वध स्थल पर गई। आखिर एक जाल में लपेटकर उसे साँड के आगे डाला गया और इस तरह उसका अन्त हुआ।

परपिटु एक २२ वर्ष की विवाहिता स्त्री थी। इसकी गोद में एक छोटा बच्चा था। जब उसे ईसाई होने के अपराध में वध की आज्ञा दी गई तो प्रथम उसका बालक छीन कर क्रूरता से मार डाला गया। फिर वधिक उसे वध स्थान पर ले चले। उसने निर्भय होकर मृत्यु का सामना किया। उसके वृद्ध पिता ने स्नेहवश उसे विचलित करना चाहा, परन्तु उसने बड़ी वीरता पूर्वक कहा—'पिता, शांत हो, क्या यह धर्म युद्ध से पीछे हटने का समय है। आत्मा में बल आने दो—ईश्वर के लिए इसमें विघ्न मत करो।' इतना कह वह वधस्थल पर आ खड़ी हुई और पशुओं से फाड़ डाली गई।

सन् २६० में रोम की ईसाइयों की मंडली का लिकस्त नाम का अध्यक्ष मारा गया। जब नगर के अधिकारी ने सुना कि

मंडली के पास बड़ी भारी धन संपत्ति है तो लौरिन्तिय नामक प्रधान सेवक को बुलवाकर उसने आज्ञा दी कि सब धन हाज़िर करे। उसने कहा—सब धन सम्पत्ति को सँभालने और उसका बीजक बनाने के लिए मुझे तीन दिन का अवकाश दीजिए।

अवकाश मिलने के तीसरे दिन वह समस्त रोम के कंगालों को इकट्ठा कर प्रधान के महल में आ हाज़िर हुआ, और प्रधान से कहा—"हमारे प्रभु की सम्पत्ति को सँभालियेगा। आपका सारा आँगन सुनहरे पात्रों से भरा पड़ा है।' प्रधान ने बाहर आकर जब कङ्गालों का झुण्ड देखा तो आपे से बाहर हो गया, और उसने ज्वालामय नेत्रों से उसकी ओर देखा। लौरिन्तिय ने कहा—आप क्रोधित क्यों होते हैं ? आप जिस सोने को चाहते हैं वह धरती की एक साधारण धातु है जो मनुष्यों को समस्त पापों में फँसाती है। ईश्वर का वास्तविक धन तो यही है। देखिये, कितने मणि रत्न, स्वर्ण-मुद्रा जगमगा रहे हैं। कुमारिकायें और विधवायें बड़े-बड़े रत्न हैं। प्रधान ने डपट कर कहा—'मुझसे ठट्ठा करता है, ठहर ! तूने शायद मरने पर कमर कस ली है। उतार कपड़े।' उसे नंगा करके लोहे की बड़ी झझरी पर लिटाकर धीमी आँच से भूनना शुरू किया। वह धैर्यपूर्वक एक करवट भुनता रहा—तब उसने प्रधान को पुकार कर कहा—'यह पंजर तो पक चुका, अब दूसरी कर्वट भुनवाइये।' दूसरी कर्वट लेने पर जब उसका जीवन थकित हुआ तो उसने रोम के निवासियों के लिये सुख और शान्ति की

याचना की और सदा के लिये मृत्यु की गोद में सो गया।

इसी वर्ष कैसरिया नगर में कूरिल नामक एक छोटा-सा बालक रहता था। यह ईसा का नाम नित्य लेता था। इसके लिए उसके साथी लड़कों ने उसे मारा, बाप ने घर से निकाल दिया, अन्त में वह रोम के न्यायाधीश के पास पहुँचाया गया। न्यायाधीश ने उसे समझा कर कहा—"बच्चे, तू बड़ा सुकुमार है, तू यह कैसा पाप करता है कि मसीह का नाम लेता है? उसे छोड़ दे, मैं तुझे तेरे बाप के पास भेज दूँगा और समय पर तू उसकी अतुल सम्पत्ति का अधिकारी बनेगा।"

परन्तु बालक ने तेजपूर्ण स्वर में कहा—"आपकी इस कृपा के लिये धन्यवाद! पर मैं परमेश्वर के नाम पर कष्ट भोगने में सुखी हूँ। प्रभु का घर उत्तम है, और न मुझे मरने का डर है, क्योंकि प्रभु का उपदेश है कि मृत्यु ही उत्तम जीवन देती है।"

न्यायाधीश उसके उत्तर से दङ्ग हो गया। उसने डराने के लिए उसे वध-स्थल पर ले जाने की आज्ञा दी। न्यायाधीश को आशा थी कि बालक भयङ्कर आग को देखकर डर जायगा। पर जब वह लौटकर भी वैसा ही सतेज और निर्भीक बना रहा तो न्यायाधीश बड़े विचार में पड़ा। वह दया-वश उसे मारना न चाहता था। उसने उसे समझाया। बालक ने कहा—"शीघ्र अपनी तलवार का काम खतम कीजिये, ताकि मैं प्रभु के पास जाऊँ। यह द्विविधा का जीवन मुझसे एक क्षण भी नहीं सहा जाता।"

जो लोग आस-पास खड़े थे, रोने लगे। उसने सब से उत्साहपूर्ण वाक्यों में कहा—"खेद है कि तुम नहीं जानते कि मैं कैसे सुन्दर नगर को जाता हूँ। इस बात को तुम जानते तो निश्चय आनन्दित होते।" इतना कह वह बड़े आनन्द से वध-स्थल की ओर गया।

सन् १६४१ ईस्वी में आयर्लैंड में जब ईसाई लोग पोप के धर्म को छोड़कर प्रोटेस्टेन्ट होने लगे तब पोप ने फतवा दे दिया था कि "तमाम आदमी जो प्रोटेस्टेन्ट हो गये हैं, मार डाले जावें।" उस घोषणा के आधार पर लगभग दो लाख ईसाई बड़ी निर्दयता से मार डाले गये थे। इस महावध की खबर सुनकर पोप ने आयर्लैंड में एक बड़ा भारी उत्सव किया था।

ड्यूक आफ अलाबा ने—जो कि उस समय नैदर्लैण्डस (Netherlands) का गवर्नर था, सहस्रों जल्लाद नौकर रख छोड़े थे जो प्रोटेस्टेन्टों को क़त्ल किया करते थे। दो वर्ष के अन्दर उन्होंने छत्तीस हज़ार ईसाइयों को मार डाला था। जो गाँवों और बस्तियों में बच रहे थे उन पर अतिरिक्त टैक्स लगाकर यह अत्याचारी चार करोड़ रुपया प्रति वर्ष वसूल किया करता था। इसका पोप के दरबार में बड़ा आदर था।

पोपों ने एक गुप्त समाज पहले पहल स्पेन देश में बनाया, फिर इटली में और पीछे अन्य देशों में भी। इसका नाम इनक्विज़िशन Inquisition) अर्थात् कसने का समाज था। इसमें अनेक प्रकार के भयानक शिकंजे मनुष्यों को कसने या उनके

अंगों को काटने के लिए रक्खे गए। कोई स्त्री, पुरुष या बालक यदि इस अपराध में पकड़ा गया कि वह पोप का विरोधी है तो उसे उसमें कसते थे—कष्ट देकर सब भेद पूछते थे। इसके मेम्बर रात को लोगों के घर में घुस जाते और उन्हें सोते हुए उठा लाते तथा इसमें कस देते थे। इसके सिवा जो लोग इन शिकंजों में दबने से कई दिन तक भी न मरते थे और न पोप के धर्म को स्वीकार करते थे, उन्हें जीता जला दिया जाता था। एक टोलेडा (Toledo) नाम का बिशप था जो प्रोटेस्टेन्ट हो गया था। उसने यह उपदेश दिया था कि पोप में क्षमा कराने की शक्ति नहीं है। तुम्हारे प्रभू मसीह का प्रायश्चित ही काफी है। इस अपराध में उसे इस सभा ने १८ वर्ष तक जेल में रक्खा था। यह हत्यारी सभा सन् १४८१ से सन् १८०८ तक ३२७ वर्ष तक अखंड रूप से चलती रही और इस बीच में इसने ३४१०२१ प्राणियों का वध किया जिनमें ३२ हजार के लगभग जीते जलाये गये, २ लाख ९१ हजार ४५६ अर्थात् कुछ कम ३ लाख ऐसे महा दुःख और कष्ट में डाले गये जो बयान से बाहर हैं। १७॥ हजार ऐसे थे जो या तो कैद में मरे या निकल भागे—उनके चित्र बनाकर जला दिये गये कि लोग डरें।

आरविन साहब (Arvina) नामक एक विद्वान् ने हिसाब लगाया है कि—

१—पोप जूलियस (Julius) के राज्य-काल में ७ वर्ष के भीतर दो लाख क्रिस्तान मारे गये।

२—फ्राँस में पोपों ने ३ मास में दो लाख ईसाई मारे।

३—फिर वालदेन्सी और आलबीगेन्सी (Waldenses and Albigenses) क्रिस्तानियों में १० लाख आदमी क़त्ल किये।

येसुवीत समाजियों (The Teswits) के तीन वर्ष के बीच नौ लाख ईसाई मारे गये थे। ड्यूक आफ आलवा की आज्ञा से ३६ हजार ईसाई मारे गये। इस प्रकार धार्मिक अत्याचार की भेंट निरपराध ५ करोड़ ईसाई स्त्री, बच्चे, बूढ़े, जवान मार डाले गये।

हज़रत मुहम्मद ने इस्लाम धर्म की नींव डाली। प्रारम्भ में उन्हें सफलता न मिली। उन्होंने तलवार को धर्म का माध्यम बनाया। उन्होंने घोषणा की—

मेरे धर्म के प्रचारकों को तर्क के झगड़े में न पड़कर तलवार पर ही भरोसा करना चाहिए। जो आदमी मेरा धर्म स्वीकार न करे या उस पर सन्देह करे, उसका सिर काट लेना चाहिए। मेरे धर्म में तलवार ही सब कुछ है। जो कोई धर्म-युद्ध में मरे-मारेगा, बहिश्त पावेगा—जहाँ शराब की नदियाँ, उत्तम मांस के पकवान और स्त्रियाँ तथा गुलाम मिलेंगे।

मुहम्मद साहब ने तलवार के ज़ोर से बहुत शक्ति पैदा कर ली और मृत्यु के समय १ लाख के लगभग उनके अनुयायी थे। सारे अरब में इस्लाम धर्म फैल गया। मुहम्मद साहब की कड़ी आज्ञा थी कि सारे अरब में जो मेरे धर्म को अस्वीकार करें

उनको क़त्ल कर दो; भाइयों, मित्रों और सम्बन्धियों का भी लिहाज़ न करो। उन्होंने अपने जीवन काल में यमन और शाम देशों पर भी सेनायें भेजी थीं।

उनकी मृत्यु के बाद खलीफा अख्तर ने तुरन्त सारे अरब से सेना इकट्ठी की और उसके चार भाग करके दमिश्क, शाम फिलस्तीन और ईरान पर चढ़ाई कर दी। इन सेनाओं में लगभग ८० हज़ार मुसलमान सिपाही एकत्र किये गये थे और उन्होंने शाम, और दश्मिक की ईंट-मे-ईंट बजादी। ऐसे अत्याचार और निर्दयता से मार काट की कि सारा देश एक बारगी कराह उठा। शाम का बादशाह दो लाख सेना सहित नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। इस मुहीम के दौरान में एक बार ऐसा हुआ कि ख़लीद सेनापति ४००० हज़ार लिये धावा मार रहा था। मार्ग में उसने कुछ राहगीरों को जो पकड़ा जो नदी किनारे खाना बना रहे थे। स्त्रियाँ भोजन बना रही थीं, बच्चे इधर उधर खेल रहे थे, पुरुष कपड़े सुखा रहे थे। खलीद ने उन्हें लूट कर क्रूरता पूर्वक काट डाला। सुन्दरी स्त्रियों को कैद कर लिया। शाम के बादशाह की बेटी भी उनमें कैद कर ली गई। जब उसका परिचय प्राप्त हुआ तो खलीद ने घमंड से कहा—जाकर अपने बाप से कह दे कि इस्लाम धर्म स्वीकार करले वरना मैं उसका सिर काटने के लिये आ रहा हूँ, और उसे छोड़ दिया।

इसके बाद ख़लीफ़ा उमर ने अपने शासन काल की ११ वर्ष की अवधि में शाम, मिश्र और पैलस्टाइन तथा ईरान को पूर

तया फतह कर लिया था । इस ख़लीफ़ा ने ३६ हज़ार नगर और क़िले काफ़िरों से छीने, ४० हज़ार गिर्जे और मन्दिर ढहाये, और लगभग ८ लाख स्त्री बच्चे और पुरुष-क़त्ल किये। इनमें एक लाख पारसी थे। फारिस के बादशाह का एक डब्बा जवाहरात का सेना के हाथ लगा था जिसे ख़लीफा के हुक्म से बेचकर फौज में बांट दिया गया। यह डब्बा ३ अरब २० करोड़ रु० में बिका। उस समय ४० हजार सेना वहां थी, सबको अस्सी २ हजार रुपये बाँट दिये गये। इसी ख़लीफा ने पृथ्वी का महान नगर सिकन्दरिया और संसार का अद्भुत पुस्तकालय नष्ट किया। सिकन्दरिया की नींव बादशाह सिकंदर ने डाली थी। यह नगर एशिया और यूरोप के व्यापार का प्रमुख केन्द्र था।

इसे यूनानी इञ्जिनियरों ने बड़ी सावधानी से बनाया था और इसमें चार हज़ार महल, पांच हजार स्नान घर, चार सौ नाट्य शालाएँ, बारह हज़ार बाग़ और अन्यों के अलावा चालीस हज़ार यहूदी करोड़पति थे। इसमें एक महान पुस्तकालय था जो अजायब-घर के नाम से मशहूर था। इसमें पृथ्वी-भर की दस लाख पुस्तकें संग्रहीत थीं जिनमें ऐसे ग्रन्थ भी थे जिनका एक एक का मूल्य पेंतालीस हज़ार रुपये तक था।

जब यह नगर मुसलमानों ने विजय किया तो ख़लीफा से पूछा गया कि इस पुस्तकालय का क्या किया जाय? उसने उत्तर दिया—"अगर ये किताबें कुरान के अनुकूल हैं तो इनकी आवश्यकता नहीं क्योंकि कुरान ही काफी है। और यदि उसके

विपरीत हैं तो भी उनकी ज़रूरत नहीं। अतः सब पुस्तकों को नष्ट कर दो।" मुसलमान सेनापति ने पाँच हज़ार हमामों को वे पुस्तकें बाँट दीं जहाँ वे ईंधन के स्थान पर जलाई गईं और इस प्रकार ६ मास तक उनसे हमाम गर्म किये गये।

इसके बाद उस्मान ख़लीफा हुए। उसने फारिस के मुल्क पर चढ़ाई बोल दी। वहाँ के बादशाह यज्दगुर्द की बाबत खलीफ़ा उमर कह गये थे कि उसे ज़िन्दा न छोड़ना। इस ख़लीफा ने अनायास ही चार हज़ार वर्ष पुराने उस राज्यवंश और देश को विध्वंस कर दिया। यह १५ वर्ष तक ख़लीफा रहा।

भारतवर्ष में मुस्लिम आक्रमणकारियों के अत्याचार भी कम रोमांचकारी नहीं। गुलाम वंश के कुतुबुद्दीन ऐबक ने हाँसी, दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, रणथम्बोर, अजमेर, ग्वालियर, कालिंजर और गुजरात में हाहाकार मचा दिया था। हज़ारों मन्दिर ज़मीदोज़ कर दिये गये, और लाखों स्त्री-पुरुषों को गाजर-मूली की भाँति काट डाला। इसके बाद गुलाममुहम्मद ने काशी के हज़ारों मन्दिरों को ढहा दिया और बिहार, बंगाल में पाल और सेन वंशीय राजाओं के राज्य को विध्वंस कर दिया। बारह हज़ार बौद्ध साधुओं को तलवार के घाट उतार डाला और उनका अप्रतिम ग्रन्थागार भस्म कर दिया। उन्होंने अलतमश के प्रसिद्ध मन्दिर को ढहा दिया और करोड़ों रुपये की सम्पदा लूट ली।

जलालुद्दीन फ़िरोज़शाह खिलजी ने जैसलमेर पर आक्रमण किया। वहाँ का राजा मारा गया, नगर विध्वंस कर दिया गया और रानी को चौबीस हज़ार राजपूतनियों के साथ जलकर लाज बचानी पड़ी। उसका भतीजा अलाउद्दीन दक्षिण तक बढ़ गया और देवलगढ़ के राजा रामदेव यादव से विश्वासघात करके उसे मार डाला, राज भवन लूट लिया, मन्दिर ढहा दिए और करोड़ों रुपये की सम्पदा छीन ली। इसके बाद जैसलमेर, चित्तौर और गुजरात पर जिहाद की चढ़ाई की। जैसलमेर में सोलह हज़ार और चित्तौर में तेरह हज़ार स्त्रियाँ भस्म हो गईं। गुजरात के राजा की रानी और राजकुमारी, अलाउद्दीन के हाथ लगीं और उसने उन्हें बलपूर्वक अपनी स्त्री बना लिया।

इस बादशाह ने हिन्दुओं की यह दुर्दशा कर रखी थी कि कोई हिन्दू सवारी के लिए घोड़ा न रख सकता था, न शस्त्र धारण कर सकता था, न बढ़िया कपड़े पहन सकता था। एक बार उसने क़ाज़ी से पूछा कि हिन्दुओं के लिए क्या क़ानूनी अधिकार हैं, तो उसने कहा:—

हिन्दुओं का नाम ख़िराजगुज़ार है। जब मुसलमान हाकिम उससे चाँदी माँगे तो उसे बेउज्र हाथ जोड़कर हाकिम को चाँदी की जगह सोना भेंट करना चाहिए। यदि मुसलमान उसके मुँह में थूकना चाहे या मैला डालना चाहे तो उसे अपना मुँह खोल देना चाहिए कि मुसलमान को तकलीफ़ न हो क्योंकि खुदा ने हिन्दुओं को महा नीच और घृणित बनाया है।"

इसके बाद उसने बादशाह से कहा—"आपके राज्य में काफिरों की यह दुर्दशा हो गई है कि उनके स्त्री-बच्चे मुसलमानों के द्वार पर रोते और भीख माँगते फिरते हैं। इस शुभ काम के लिए खुदा आपको जन्नत न भेजे तो मैं ज़िम्मेदार हूँ।"

पाठक इस धर्म-गुरु की भयानक वृत्तियों से हिन्दुओं की उस दिनों की दयनीय दशा का अनुमान लगा सकते हैं।

मुहम्मद तुग़लक़ ने जहाद में इतना रक्तपात किया कि लाखों आदमियों को गाजर-मूली की भांति कटवा डाला। नाक-कान कटवाना, आँखें निकलवाना, सिर में लोहे की कील ठुकवाना, आग में जिन्दा जलवाना, आरे से चिरवाना, खाल खिंचवाना, हाथी से कुचलवाना, सिंह से फड़वाना, साँप से डसवाना, यह इस व्यक्ति की मनोरंजक सजाएँ थीं।

फ़िरोज़शाह तुग़लक ने नगरकोट को विजय करके गौमांस के टुकड़े तोबड़ों में भरकर हिन्दुओं के गले में लटकवा दिए थे, और उन्हें बाज़ार में फिरा-फिरा कर खाने की आज्ञा दी थी। जिसने इनकार किया उसका सिर काट लिया गया था। जब वह जम्बू गया और वहाँ का राजा उससे मिलने आया तो उसके मुँह में इसने गौ-मांस ठुँसवा दिया।

तैमूर लँगड़ा जहाद का झंडा ले ६२ हज़ार सवार लेकर लूट-मार और क़त्ल करता आया और भटनेर में १ घंटे में उसने १० हज़ार स्त्री-पुरुषों को काट डाला। यहाँ से यह दिल्ली

पहुँचा और १ लाख हिन्दुओं के सिर काटकर इसने ईद की नमाज़ पढ़ी। तुजुक-तैमूरी में लिखा है कि इसके प्रत्येक सिपाही ने १५-१५ हज़ार हिन्दू मारे। यहां से वह मेरठ पहुँचा और हज़ारों स्त्री-पुरुषों को कत्ल किया और हज़ारों को कैद किया। प्रत्येक सिपाही के हिस्से में बीस से सौ कैदी तक आये। वहां से वह हरिद्वार गया, जहां गंगा का पर्व था। वहां लाखों यात्रियों को क़त्ल कर उनके खून से गंगाजल को लाल कर दिया।

सिकन्दर लोदी के अत्याचार प्रसिद्ध हैं। बाबर ने जब फ़तहपुर सीकरी को विजय किया तब इतने हिन्दुओं को क़त्ल कराया था कि उसके तम्बू के सामने खून की नदी बह निकली थी। औरंगजेब के अन्ध-धर्म के अत्याचार जगत् प्रसिद्ध हैं। इसने असंख्य मन्दिर ढहाये, कुरुक्षेत्र में लाखों मनुष्यों को मारकर खून की नदी बहाई, गुरू तेग़बहादुर के एक शिष्य को आरे से चिरवाया, दूसरे को खौलते तेल में डलवाकर औटाया, स्वयं गुरू का सिर कटवाया। सतनाम धारी साधुओं का क़त्ल कराया, आदि।

अँग्रेज़ी अमलदारी में यद्यपि इस प्रकार के अत्याचारों के मौके नहीं मिले परन्तु धार्मिक अन्ध विश्वास के कारण ही मुसलमानों, ने मुलतान, मलाबार, अजमेर, सहारनपुर, दिल्ली गोंडा, कोहाट आदि स्थानों में हिन्दुओं पर अत्याचार किये और अब विभाजन के बाद का रक्तपात तो विश्व के इतिहास

में एक बे जोड़ वस्तु है।

जहाद की युद्ध-यात्राएँ करनी इस्लाम धर्म की धार्मिक आज्ञायें हैं। सूराबकर में लिखा है—"जो मुसलमान जहाद में मारा जाय उसे मुर्दा न समझना चाहिए।" सूरानिशा में लिखा है—"काफ़िरों को मित्र मत बनाओ और यदि वे मुसलमान न हो जायँ तो उन्हें मार डालो।" सूराबकर में एक स्थान पर लिखा है—"जिस जगह काफ़िर को देखो, मार डालो और उसे घर से निकाल दो।"

प्राचीन भारत के धर्म संघर्ष पर भी एक दृष्टि डालिए। बुद्ध की मृत्यु के ढाई-सौ वर्ष के अन्दर, उस समय के हिन्दू धर्म को भारत से निकाल कर बौद्धों ने अपना एकाधिकार कर लिया था। परन्तु पुरोहितों की ओर से बराबर उनके विरुद्ध विद्रोह की आग सुलगती ही रही। धीरे-धीरे प्रतिमा-पूजन हिन्दू और बौद्ध दोनों में प्रचलित हुआ, फिर वैष्णव, शैव, शाक्त सम्प्रदाय बड़े और सबने मिलकर बौद्ध-धर्म को निकाल बाहर किया। अपने काल में बौद्धों ने बड़े-बड़े भयानक अत्याचार किये थे। बल पूर्वक नागरिकों की सम्पदा का हरण करते, उनके उत्तराधिकारियों को भिक्षु बनाते और न जाने क्या-क्या अन्धेर करते थे। अन्त में हिन्दुओं ने बौद्धों को नगर से बाहर मरघटों में रहने को विवश किया, और पुरोहितों व पंडों के अत्याचार-पूर्ण जीवन फिर आनन्द-पूर्वक व्यतीत होने लगे।

आज भी धर्म-सम्बन्धी सारे अत्याचार वैसे ही बने हुए हैं। धार्मिक अत्याचारों का एक प्रमाण तो यह है कि आज छः

करोड़ों ने पैरों में बलपूर्वक कुचल रक्खा है। उनकी स्त्रियां, बच्चे, बुजुर्ग, किसी को भी उन्नत होने देना अपराध समझा जा रहा है। यह धार्मिक अत्याचार ही है कि निकम्मे, मूर्ख, ठग, भिखारी ब्राह्मण सिर्फ ब्राह्मण-जाति में जन्म लेने के कारण ही श्रेष्ठ समझे जाते हैं। और अन्य जाति के श्रेष्ठ पुरुष नगण्य समझे जाते हैं। यह धार्मिक अत्याचार ही है कि करोड़ों विधवाएं बचपन से वृद्धावस्था तक मृतपति के नाम को रोती हैं, जिसे उनमें से बहुतों ने कभी देखा तक भी नहीं।

भविष्य में यह धार्मिक अत्याचार नहीं रहने पावेंगे। इन धर्म ढकोसलों को नष्ट करके प्रत्येक मनुष्य को आज़ाद होना होगा। वह दिन दूर नहीं है—जब कि अछूतों, विधवाओं, ग़रीबों और शूद्रों को मनुष्योचित अधिकार प्राप्त होंगे और उन्हें हर प्रकार से अपने जीवन को उन्नत बनाने के अवसर दिए जायेंगे।

५

हत्या

कुछ दिन पूर्व देशाटन करते हुए मुझे श्री वैद्यनाथ धाम जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस दिन विजय दशमी थी। मन्दिर में बहुत से बाहर के यात्री आए हुए थे। हम लोग स्नान आदि से निवृत्त होकर पंडे के साथ मन्दिर को चले। ज्योंही हमने मन्दिर के प्रांकण में प्रवेश किया कि देखा—एक व्यक्ति कुछ विचित्र सी वस्तु केले के पत्ते में लपेटे बड़ी स्वच्छता से लिए जा रहा है। वह ब्राह्मण था। जनेऊ गले में डाले था। तिलक भी सारे अंग पर लगा था। मेरे पास एक बालक था, उसने पूछा—यह क्या चीज़ है? मैं स्वयं भी उसे कोई अद्भुत फल समझा—पर ज्योंही वह निकट होकर गुजरा तो मैंने देखा कि वह बकरे की दो टांगें थीं।

मैंने चौकन्ना होकर पंडे से पूछा—कि यह क्या है? उसने कहा—माई का भोग है। मन्दिर के विशाल प्रांगण में आकर जो देखा, उसे देख कर आंखें खुल गईं। मैंने अपनी आंखों से

जीवित पशु का हनन इतने निकट से कभी नहीं देखा था, पर वहां सन्मुख मैंने देखा कि यथार्थ नाम खून की नदी बह रही है, सैकड़ों धड़ इधर उधर तड़प रहे हैं, और एक एक क्षण में खटाखट हो रही है। इतना अधिक रक्त एकबारगी ही देखकर और ऐसा भयानक दृश्य देख कर मेरी पत्नी और बालक तो इस तरह भयभीत हुए कि मैंने समझा कि वे बेहोश हो जायेंगे। मैं स्वयं भी बहुत ही विचलित हो उठा, पर तुरन्त मैं एक कदम और आगे बढ़ गया और ग़ौर से वह अभूतपूर्व दृश्य देखने लगा।

मन्दिर का प्राङ्गण बहुत विशाल था। उसमें पचास हज़ार मनुष्य खुशी से समा सकते थे, और उस समय पन्द्रह बीस हजार से कम स्त्री-पुरुष वहाँ न होंगे। हठात् वेग से खांडा पड़ता और धड़ रक्त का फव्वारा छोड़ता हुआ धरती पर तड़पने लगता। सिर को मन्दिर के चबूतरे पर खड़ा हुआ पुजारी रस्सी के सहारे फुर्त्ती से ऊपर खींच लेता। पाँच आने पैसे, एक नारियल और कुछ पुष्प एक दौने में रख कर सिर के साथ पशु के स्वामी को देने पड़ते, तब वह स्वयं जाकर सिर को देवी की भेंट कर सकता था। वहाँ से उसे दौने में प्रसाद मिलता। वह बाहर आकर अपने पशु का धड़ खींच कर एक ओर ज़रा हट कर बैठ जाता और उसकी खाल उधेड़ना शुरू करता। पण्डे लोग भी जुट जाते और वहीं उसके खण्ड-खण्ड करके हिस्से बाँट लिये जाते। हिस्से बांटने में खूब 'तू-तू मैं-मैं' होती थी।

मन्दिर में चारों ओर यही बूचड़खाना फैला हुआ था। मेरे

पैरों में मानों लोहे की कीलें जकड़ दी गई थीं। मैं लगभग ८ या ८॥ बजे मन्दिर में घुसा था और एक बजे तक, जब तक कि बधिक अपना काम करता रहा, वहीं खड़ा रहा। मेरी पत्नी और साथी लोग हताश होकर एक तरफ हट कर बैठ गये थे। मैंने हिसाब लगा कर देखा, कुल मिला कर लग-भग बारह सौ बकरे वहाँ मेरे सन्मुख काटे गये और तीन या चार भैंसे। भैंसों के सिर काटने, उनके तड़पने, उनके सिर को यूप में फसाने का दृश्य अत्यन्त भयानक और राक्षसी था। आज भी मैं उस दृश्य को याद करके भयभीत हो जाता हूँ। यह अनिवार्य था कि एक ही प्रहार में सिर कट जाय और वह सिर धरती में न गिरने पावे।

मैंने फिर मन्दिर की मूर्त्ति नहीं देखी। लौट कर स्नान किया और धर्मशाला से सामान उठा स्टेशन की राह ली। उस पापपुरी में हम लोग अन्न-जल ग्रहण न कर सके।

वहाँ मैंने मछलियों के खुले बाज़ार देखे। आँगन की एक ओर शिवजी का मन्दिर था और दूसरी ओर देवी का। दोनों मन्दिरों के कलशों पर बहुत-सी लाल रंग की कत्तरें बंधी थीं, जिनका एक सिरा इस मन्दिर के कलश में और दूसरा दूसरे के कलश में था। देवी के मन्दिर का चबूतरा इतना ऊँचा था कि खड़े मनुष्य की गर्दन तक आता था। उसी के सामने एक काष्ठ का यूप खड़ा था, जिसमें एक गढ़ा इस भांति किया गया था कि उसमें पशु की गर्दन आसानी से आ सके। गर्दन फँसाकर

एक छिद्र द्वारा लोहे के एक सींखचे से उसे अटका दिया जाता था। चबूतरे पर एक आदमी हाथ में छींका जैसी वस्तु रस्सी के सहारे पकड़े खड़ा था। वधिक ब्राह्मण था, और वह स्नान कर तिलक-छाप लगाये, स्वच्छ जनेऊ पहिने, हाथ में खांडा लिए खड़ा था। प्रत्येक जीव की हत्या करने की उसकी फीस एक आना थी। इकन्नियों की उस पर वर्षा हो रही थी। उसने अपनी धोती में एक पोटली बांध रक्खी थी, जिसमें वह उन इकन्नियों को डाल रहा था। लोग अपने-अपने पशुओं को, कोई धकेल कर, कोई कन्धे पर, कोई रस्सी द्वारा खींच कर और कोई मारता हुआ ला रहा था। मैंने भलीभाँति देखा—प्रत्येक पशु अपनी भावी मृत्यु को समझ रहा था और वह भय से कम्पित और अश्रुपूरित था। सब पशु आर्तनाद कर रहे थे। कटे हुए सिरों के ढेर और फड़कती हुई लाशों को देखकर मूर्छित से होकर गिरे पड़ते थे। प्रत्येक आदमी की इच्छा पहिले अपना पशु कटाने की थी और प्रत्येक व्यक्ति आगे बढ़कर अपनी इकन्नी वधिक के हाथ में देना चाहता था। वधिक इकन्नी टेंट में रखता और पशु का स्वामी पशु को यूप के पास धकेलता। वधिक का सहायक फुर्ती से उसकी गर्दन यूप में फँसाकर यूप के छेद में लोहे का सरिया डालता और छींका उसके मुख पर लगा देता।

मन्दिर के एक स्थान पर स्त्रियां दोनों में कुछ अद्भुत घनौनी वस्तु लिये बैठी थीं। सड़ी हुई लीची को छील कर

रखने से जैसी आकृति होती है, वैसी वह चीज थी, पूछा तो कहा—आँखें हैं, अर्थात् मरे हुए पशुओं की आँखें निकाल कर एकत्र की गई हैं। पूछा कि इनका क्या होता है? कहा—खाते हैं।

मैंने इस घटना से दस वर्ष पूर्व जयपुर आमेर की शिलादेवी के आँगन में बकरे का वध होते देखा था, और विन्ध्याचल के मन्दिर में साधारण दृश्य देखा था—पर ऐसा भयानक रोमांचकारी बूचड़खाना, और खुलेआम पशुओं का वध इतनी अधिक संख्या में मैंने नहीं देखा। मेरी इतनी अभिरुचि देखकर पंडे ने मुझे भी एक बकरा माई की भेंट करने को प्रोत्साहित किया और कहां से वह सस्ता बकरा ले आवेगा यह भी उसने बताया।

वहाँ से कलकत्ते गया। वहाँ काली जी के मन्दिर में भी मैंने अल्प संख्या में यही दृश्य देखा, और इसी भांति का माँस-विक्रय का बाज़ार भी देखा। अन्य काली, दुर्गा आदि के मन्दिरों में इसी प्रकार से पशु-वध होते ही हैं और मेरे लिये यह अनोखी घटना थी—पर हिन्दू जाति के धर्म-तत्व को जो भाग्यवान् लोग समझते हैं—वे जानते हैं कि इसमें अनोखा कुछ भी नहीं है। सब स्वाभाविक ही है।

मन्दिरों में देवताओं के सामने पशु-वध करना केवल भारतवर्ष में ही नहीं प्रत्युत किसी जमाने में सारे संसार की पुरानी जातियों में प्रचलित था। रोम, ग्रीस, मिस्र और दूसरी

उन्नत जातियां भी देवताओं के सामने पशु-हत्या करती थीं और इसे वे पवित्र कर्म मानती थीं।

यदि विचार कर देखा जाय तो यह विधि यज्ञ की हिंसाओं से ही चली है।

यज्ञ में पशु-वध की परिपाटी कब से चली - इस सम्बन्ध में ठीक ठीक मालूम नहीं हुआ है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के साथ मध्य एशिया की जातियों का, जो समय-समय पर संघर्ष होता रहा था, भारत की अनार्य जातियों का जो आर्य्यों से सम्पर्क रहा, उनसे ब्राह्मणों के यज्ञ में पशुवध प्रचलित हुआ, क्योंकि वे सभी जातियां बलिदान को पवित्र कार्य समझती थीं। यज्ञ में बलिदान देने के विषय में शतपथ ब्राह्मण (१।२।३।७।८) में लिखा है—

"पहले देवताओं ने मनुष्य को बलि दिया, जब वह बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया—और उसने घोड़े में प्रवेश किया। तब उन्होंने घोड़े को बलि दिया। जब घोड़ा बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने बैल में प्रवेश किया। तब उन्होंने बैल को बलि दिया। जब बैल बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने भेड़ में प्रवेश किया। जब भेड़ को बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने बकरे में प्रवेश किया तब उन्होंने बकरे को बलि दिया, तो यज्ञ का तत्व उसमें से भी निकल गया और तब उसने

पृथ्वी में प्रवेश किया। तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा और उसे चावल और जौ के रूप में पाया।"

ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद सूत्रकाल में ब्राह्मणों के विस्तृत वर्णनों को स्रोत सूत्रों में वर्णन किया गया है। ये स्रौत सूत्र बौद्ध काल तक बनते रहे और इनमें माँस का यज्ञों में खूब उपयोग होता रहा है।

बलिदान की संख्या यज्ञ के अनुसार होती थी। अश्वमेघ यज्ञ में सब प्रकार के पालतू और जङ्गली जानवर, थलचर, जलचर, उड़ने वाले, रेंगने वाले और तैरने वाले मिला कर ६०६ से कम नहीं थे।

कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह ब्यौरा लिखा है कि छोटे २ यज्ञों में विशेष देवताओं को प्रसन्न रखने के लिये किस प्रकार का पशु मारना चाहिए। गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि उसका क्या-क्या भाग किसे मिलना चाहिए। पुरोहित लोग जीभ, गला, कन्धा, नितम्ब, टांग इत्यादि पाते थे। यजमान पीठ का भाग लेता था, और उसकी स्त्री को पेड़ू के भाग से संतोष करना पड़ता था।❀

❀ अर्थात्: सवनीयस्य पशोर्विभागं व्याख्यास्यामः, उद्धृत्यावदानि हनू सजिह्वे प्रस्तोतुः कठः स ककुदः प्रतिहर्तुः। श्येनं, पक्ष

शतपथ ब्राह्मण में इस विषय में एक मनोहर विवाद है परोहित को बैल का माँस खाना चाहिये या गायका। अन्त में परिणाम निकाला गया है कि दोनों ही माँस न खाने चाहिएँ। परन्तु याज्ञवल्क्य हठ पूर्वक कहते हैं—यदि वह नर्म हो तो हम उसे खा सकते हैं।"-:-

इस पवित्र मांस भक्षण का प्रभाव उपनिषदों तक में हो गया। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि जो कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र, विद्वान्, विजयी और सर्व वेदों का ज्ञाता हो—वह बैल का मांस चावल के साथ पका कर घी डालकर खाय।×

उद्गातुर्दक्षिणं पार्श्वं सांस मध्वर्योः, सत्यमुपगात्रीणां सव्योंसः प्रति प्रस्थातुर्दक्षिणा श्रेणी रथ्यास्त्री ब्रह्मणों वस्म कव्यं, ब्रह्माच्छा-म्नितः उरुः पोतुः सव्या श्रोणिर्होतुरपरसक्थं मैत्रावरुणस्योरु-रच्छ वाकस्य, दक्षिणादोर्नेष्ट्रः सव्यान्सदस्यस्य सदंचानूकं च गृहपतेर्जाघ्नी पत्न्यास्तासा ब्राह्मणे न प्रति ग्राहयति, वनिष्टुर्हृ-दयं वृक्कौ चांगुल्यानि दक्षिणो बाहुरग्निधस्य दक्षिणौ पादौं। गृहपतेर्वृतपदस्य, सव्यौपादौ गृहपत्न्या वृतप्रदायाः (गोपथ ब्रा० ३।१८)

-:-सधेन्व चानडुहुश्चनाश्नीयाद्धेनवनडुहौ व इदं सर्वं विभ्रितस्ते देवा अब्रवन् धेन वनडुहौ वा इदं सर्वं विभ्रितो हन्त यदन्वेषां वयसां वीय तद्धेन वनडुहयोर्दधामेति तद्रहो वाच याज्ञवल्क्य । श्नाम्येवाहमा सलचेन्द्भवतीति। (श० ३।१।२।२१)

× अथ य इच्छेत् पुत्रों में पण्डितों विजिगीतः समितिगमः

ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार की घृणास्पद हत्यायें लोगों को अप्रिय प्रतीत होने लगीं थी, और लोगों ने उनका विरोध करना शुरू कर दिया था। महाभारत में लिखा है— 'वेद में जो 'अज' से यज्ञ करने को लिखा है उसका अर्थ बीज है, बकरा नहीं ।'

'गायें अवध्य हैं, इन्हें न मारना चाहिये।'

'हिंसा धर्म नहीं है।'

चार्वाक सम्प्रदाय वालों ने उपहास से कहा था—

'यदि पशु को मारने ही से स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने माता-पिता को ही क्यों नहीं मारकर हवन कर देते।'

मत्स्यपुराण अध्याय १४३ में यज्ञ के विषय में एक मनोरंजक उपाख्यान है। ऋषि पूछने लगे—स्वयंभुव मनु के समय त्रेतायुग के प्रारम्भ में यज्ञ का प्रचार कैसे हुआ ?...

सूत जी ने कहा—वेद मंत्रों का विनियोग यज्ञ कर्म में कर के इन्द्र ने यज्ञ का प्रचार किया...जब सामगान होने लगा और पशुओं का आलंभन चलने लगा तब महर्षिगणों ने उठकर इन्द्र से पूछा—तुम्हारी यज्ञ विधि क्या है ? यह पशु-हनन की विधि तो अनुचित है, यह धर्म नहीं अधर्म हैं। तुम धान्य से यज्ञ करो।

सुश्रुषितावाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रवीतसर्वमायुरियादियात मा सौदनीं पाचत्यिवा सर्पिष्मन्त मश्नियातामीश्वरो जनयीत वा ओषणेन वा ऋषभेण वा (बृह० उ० ८। ४। १८)।

पर इन्द्र नहीं माना। तब ऋषि सम्राट् वसु के पास गये और कहा हे उत्तानपाद के वंशधर! तूने कैसी यज्ञ विधि देखी है सो कह।

वसु ने कहा—द्विजों के मध्य पशुओं से तथा फल-फूलों से यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है।

यह सुनकर ऋषि ने उसे श्राप दिया, जिससे उसका अधःपतन हो गया।

यही कथा कुछ फर्क से वायुपुराण में भी है। महाभारत में भी यह मजेदार घटना है—

इन्द्र ने भूमि पर आकर यज्ञ किया। जब पशु की जरूरत हुई तब बृहस्पति ने कहा—पशु के स्थान पर आटे का पशु बनाओ। यह सुनकर देवता चिल्ला उठे कि बकरे के माँस से हवन करो।

तब ऋषि ने कहा—नहीं धान्यों से यज्ञ करना चाहिये। बकरा मारना भले आदमियों को उचित नहीं। तब वह सम्राट वसु के पास गये और पूछा कि यज्ञ बकरे के मांस से करें या वनस्पतियों से?

तब राजा ने कहा—पहले यह कहो कि किस का क्या मत है। तब ऋषियों ने कहा—धान्य हमारा मत और पशु-हनन देवों का।

वसु ने कहा तब बकरे के मांस से ही यज्ञ करना चाहिये। तब ऋषियों ने उसे शाप दिया।

महाभारत (शांतिपर्व अ० ३४०) में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि यज्ञों में पशुवध वैदिक काल से बहुत पीछे चला है।

श्रीमद्भगवत् (४। २५। ७। ८) में एक यज्ञ के विषय में लिखा है—हे राजन्! तेरे यज्ञ में जो हज़ारों पशु मारे गये हैं, तेरी उस क्रूरता का स्मरण करते हुए वे क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।

एक बार मैं दिल्ली में कालिका जी के मेले में कुछ मित्रों के साथ गया। एक ने कुछ मिठाई मन्दिर में चढ़ाई थी। वहाँ से वह प्रसाद लाकर जब बाँटने लगे तब दौने में से बकरे का एक कटा हुआ कान निकला। तब उन्होंने दौना फेंक अपनी राह ली।

सुअर मुर्गे का बलिदान हिन्दू समाज की नीच जातियों में होली-दिवाली को अत्यन्त आवश्यक चीज़ समझी जाती रही है। देखा-देखी उच्च जाति के हिन्दू भी यह काम करते हैं।

दया मानवीय स्वभाव का सब से भारी गुण है। मूक और असहाय पशु-पक्षियों पर निर्दय होना मनुष्य के लिए सर्वाधिक कलङ्क की बात है। ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है, मनुष्य की क्रूरता कम होनी चाहिए। शृङ्गार के लिए यूरोप की स्त्रियें जिन सुन्दर पक्षियों के पर टोपी में रखती थीं उनकी नसल का अन्त हो गया—वे सुन्दर पक्षी अब फ्रांस में हैं ही नहीं। लन्दन में एक व्यापारी ने एक वर्ष में ३२ लाख उड़ने वाले, ८० हज़ार

पानी के और ८० हज़ार अन्य पक्षियों का केवल परों के लिए वध करवाया था। विलायत के एक शहर से ३ दिन में चौबीस लाख लावा मार कर एक बार लन्दन भेजे गये थे।

जब तक मनुष्य के हृदय में पशुओं के प्रति प्रेम नहीं होता, मनुष्य का हृदय परिवर्तित न होगा और घृणास्पद हत्याएँ बराबर ही होती रहेंगी।

कुछ दिन पूर्व पूने के मराठी-पत्र 'केसरी' में एक यज्ञ का हाल छपा था। इसे किसी ब्राह्मण ढूँढ़िराज गणेश वापट दीक्षित सोमयाजी ने लिखा था। उसका वर्णन इस प्रकार है—गत फ़रवरी मास में मैंने औंध में अग्निष्टोम नामक सोमयज्ञ किया था और उसमें पशु-हनन करके उसके अङ्गों की आहुतियाँ दी थीं। उस पशु-हनन के सम्बन्ध में वैदिक धर्म की आज्ञा न जानने वालों (?) ने बहुत कुछ लेख अख़बारों में लिखे थे।

ब्राह्मणादि त्रैवर्णियों के वर्णाश्रम विहित् कर्तव्यों में यज्ञकर्म मुख्य है। यज्ञ में हवन मुख्य है और हवन में अनेक देवताओं के उद्देश्य से मन्त्र-पठन पूर्वक विविध पदार्थों की आहुतियाँ दी जाती हैं। जैसे आज्य, चरु परोडाश, सोमरस ये द्रव्य हैं, तथा अज, मेष आदि पशुओं के अवयवों का मांस भी है।

भारतीय युद्ध के पश्चात् जैन और बौद्धों ने वैदिक धर्म पर बड़ा भारी हमला किया—जिससे वैदिक यज्ञ-संस्था को बड़ा भारी धक्का लगा। तथापि तत्पश्चात् गुप्त-वंशीय राजा लोग, शातकर्णी, चालुक्य, पुलकेशी आदि राजाओं ने अश्वमेध जैसे

यज्ञ (जिनमें ३०० पशुओं का हनन विहित है।) किये और वैदिक परम्परा को स्थिर किया। राजा जयसिंह ने भी अश्वमेघ यज्ञ किया था। यद्यपि हिंसा हिंसा नहीं है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा है कि—

'माहिंस्यात्सर्वाणि भूतानि अन्यथ तीर्थेभ्यः।'
तीर्थनाय शास्त्रानुज्ञा विषय, ततोऽन्यत्रत्यर्यः।

(शांकर भाष्य)

शास्त्र की आज्ञानुसार जो कर्म किया जाता है—वही तीर्थ है। इस प्रकार के कर्मों को छोड़ अन्य कर्म में हिंसा न करनी चाहिये। तात्पर्य श्रीशंकराचार्य भी यज्ञीय-हिंसा के विरोधी नहीं थे।

देवताओं के उद्देश्य से यज्ञ प्रसंग में वेदोक्त विधि से जो पशु हनन होता है—उसका नाम हिंसा नहीं है। अपना पेट भरने के लिये मांस खाने की इच्छा से जो पशु-हनन होता है वही हिंसा है वेदोक्त पशु-हिंसा में देवताओं के लिये मांसाहुतियाँ समर्पित करना ही मुख्य उद्दिष्ट होता है। हुत शेष मांस का भक्षण करना भी विधि-विहत है। अतः शास्त्राज्ञा रक्षण करने की इच्छा से ही (?) इस हुत शेष का मांस भक्षण किया जाता है।

वर्णाश्रम विहित होने ही से यज्ञीय पशु-हिंसा की जाती है। सोम योग में पशु-हिंसा के बिना कर्म पूर्ण ही नहीं हो सकता। जो निन्दक अविचार से तथा वेद शास्त्र की मर्यादा का उलङ्घन

करके इस प्रकार के सोमयोगादि वैदिक कर्मों का उपहास करते हैं, उनसे यज्ञ-कर्त्ता लोग कम अहिंसावादी हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अहिंसा परम धर्म अवश्य है, पर उसमें भी अपवाद हैं। क्षत्रिय जिस प्रकार मृगया और युद्ध में हिंसा करते हैं, उसी प्रकार यज्ञ-कर्त्ता यज्ञ-विधि के कारण पशु-हनन करते हैं।

यज्ञ में जिस रीति से पशु-हनन होता है—वह शस्त्र-वध की अपेक्षा कम दुःखदाई है।

उत्तर दिशा की ओर पैर करके पशु को भूमि पर लिटाना चाहिये, पश्चात् श्वासादि प्राण वायु बन्द करके नाक मुख आदि बन्द करें। इत्यादि सूचनाएँ शास्त्रो में कही हैं।

उदीचीनां अस्यपदो निदधात्।
अन्तरे वोष्माँण मारयतात्॥

(ऐ० ब्रा० ६।७)

तथा—

अमायु कृण्वन्तं संज्ञय यतात्॥

(तै० ब्रा० ३।६।६)

अर्थात्—पशु का हनन उसे न्यून-से-न्यून दुःख देते हुए करना चाहिये।

पाठक स्वयं ही इस धर्म के पापरूप को समझ सकते हैं।

६

व्यभिचार

ईसा के पूर्व पाँचवीं शताब्दी में बाबल के लोगों की प्रत्येक स्त्री को अपने जीवन में एक बार देवी माई लिट्टा के मन्दिर में आकर, अपने आपको उस परदेशी पुरुष को सौंप देना पड़ता था जो देवी को भेंट-स्वरूप सबसे पहले उसकी गोद में पैसा फेंकता था। इस धार्मिक व्यभिचार का आधार यूरोप में इस विश्वास पर था कि मानवों की उत्पादन शक्ति प्रकृति की उर्वरता को बढ़ाने में एक रहस्यमय और पवित्र भाव रखती है। कालान्तर में यह भी समझा समझा जाने लगा कि देवी या देवता के पुजारियों के साथ सम्भोग करने से स्त्री का बाँझ होने का भय नहीं रहता। भगवत्-पूजा में सम्भोग की पवित्रता में किसी को ऐतराज़ न था।

परदेशी जो पैसा फेंक देता था, वह देवी की भेंट चढ़ाया जाता था। और स्त्री उस परदेशी के साथ देवी की पूजा का विधान सम्पूर्ण कर उससे सहवास करती और फिर घर लौट कर निर्दोष समझी जाती थी। इसी प्रकार के रिवाज पश्चिमी

एशिया के दूसरे भाग में जैसे उत्तरीय अफ्रीका, साइप्रस और पूर्वीय मेडिटरेनियम के दूसरे टापुओं में, तथा यूनान, में भी थे। यूनान के प्रसिद्ध नगर 'कोरिन्थ' में किले के ऊपर 'एफरोडाइट' देवी का मन्दिर था। इस मंदिर में एक हज़ार से ऊपर देव-दासियाँ थीं। ये देवी के सामने नाचती गाती थीं—देश पर विपत्ति आने पर ये ही देवी से उनके दूर करने की प्रार्थनाएँ किया करती थीं, और इस कारण इनका बड़ा मान होता था। ये स्त्रियाँ अन्य पुरुषों से धन लेकर उनकी कामेच्छा भी तृप्त किया करती थीं।

यूरोप में इस्तार देवी का एक मन्दिर था। यह उर्बरता की देवी समझी जाती थी। इसकी उपासिकाएँ वेश्याएँ हो रखी जाती थीं। इन्हें 'कादिस्तू' की उपाधि मिलती थी, जो बहुत ही पवित्र उपाधि कहलाती थी।

"होरोडोटस" के पहले इस प्रकार का व्यभिचार वृक्षों की ओट में होता था और वह धार्मिक समझा जाता था। डा० जे० जी० फ्रेज़र ने अपनी 'एडोनिस एटिस ओसिरिस' नामक पुस्तक में लिखा है कि "प्रकृति की उत्पादिका शक्ति की उपासना विविध नामों से होती थी, पर उसका ढंग प्रायः एक ही सा था। उधर महादेवी और देवता का संयोग होता था तो इधर पुजारिनों और यात्रियों का जोड़ा बंध जाता। यूनान के कौरिन्थ नगर में वीनस की मूर्ति की पुजारिनें भी वेश्याएँ ही थीं और वे बड़ी श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखी जाती थीं।

ईसा की दूसरी शताब्दी तक यूनान में यह प्रथा थी कि देवी सेवा के लिए उच्च घराने की स्त्रियाँ व्यभिचार करती थीं। इस प्रथा को बादशाह कान्टेएटाइन ने बन्द कर दिया था।

दक्षिण भारत में देव मन्दिरों में देव-दासियाँ रहती हैं। बचपन में इनके माता पिता इन्हें मन्दिर में चढ़ा जाते हैं—वहीं ये बड़ी होती हैं। इनका मुख्य काम देव-प्रतिमा के सन्मुख नाचना है। ये उस देवता के साथ ब्याही होती हैं। इनमें से कुछ सुन्दर स्त्रियाँ पण्डे पुजारियों के व्यभिचार की सामग्री होती हैं, शेष देव-दर्शन को आये हुये यात्रियों की काम वासना को पूरी करके जीवन-निर्वाह करती हैं। ये देव-दासियाँ जगन्नाथ से लेकर दक्षिण के सभी मन्दिरों में नाचती हैं। बचपन में ही जब इनके माता पिता इन्हें मन्दिरों में दान कर जाते हैं—तब मन्दिर के तत्वावधान में उस्ताद लोग इन्हें नाचने गाने की शिक्षा देते हैं। इससे प्रथम एक रस्म अदा की जाती है कि इनका विवाह देवता की तलवार, फूल, या मूर्ति के साथ कर दिया जाता है। ये मन्दिरों में या मन्दिरों के आस-पास रहा करती हैं। उनके गुज़ारे के लिए मन्दिर से एक बंधी रक़म मिल जाया करती है।

मद्रास के चिंगलपट ज़िले के कोरियों (कपड़ा बुनने वालों) में यह रीति है कि वे अपनी सबसे बड़ी, कहीं कहीं पांचवी लड़की को किसी मन्दिर में दान कर देते हैं। इस प्रकार दान

की हुई कन्या महाराष्ट्रों में 'मुरली' कहाती हैं; और तैलंग में 'वसव' कहाती हैं, मद्रास व बम्बई प्रांतों में उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। जैसे योगनी, भावनी, नैकनी, कलावन्ती, देवली, जोगती, मतंगीशरणा आदि।

ये स्त्रियां मन्दिरों में तो नाचती ही हैं परन्तु विशेष अवसरों पर बुलाने से अमीरों के घरों पर भी नाचने गाने जाती हैं। यह गले में जेवर पहिनती हैं, उनमें इनके देवता की मूर्ति भी चित्रित रहती हैं। कोई इस मूर्ति को केसरिया धागे में पिरोकर गले में पहिनती हैं और उसे अपने सौभाग्य का चिन्ह समझती हैं।

मालूम होता है कि देव-दासियों की प्रथा बहुत पुरानी है। कालीदास ने अपने मेघदूत काव्य में उज्जैन के महाकाल के मन्दिर में इनके नृत्य की चर्चा इस भांति की है—

पादान्यासैः कणितरशनास्तत्रलीलावधूतै,
रत्नच्छाया खचित बलिभिश्चामरैःक्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तोनखपदसुखान्प्राप्यवर्षाग्रविन्दू—
नाकोच्यन्ते त्वयिमधुकर श्रोणिदीर्घान्कटाक्षान्।

बुद्ध भगवान के सन्मुख भी गया में एक वेश्याओं का झुंड नाचता गाता आया था। यह गया के इन्द्रदेव के मन्दिर की देवदासियाँ थीं। इसका आकर्षक वर्णन अँग्रेजों की प्रसिद्ध पुस्तक 'लाइट आफ़ एशिया' में किया गया है।

देवदासियों की सम्पत्ति का अधिकार पुत्रों को नहीं पुत्रियों

को होता है।

जगन्नाथजी के मन्दिर में जो देवदासियां होती हैं, वे गांधारी कहाती हैं। वहां उनके १०८ घर हैं, जो बारी बारी से दिन में तीन बार मन्दिर से नाचने जाती हैं। ये दासियाँ सिर्फ नाचती हैं, गाती नहीं। इनकी एक जाति बन गई है, और उपर्युक्त १०८ घरों में ही वे परस्पर शादी सम्बन्ध करती हैं।

कुछ दिन हुए, बड़ी व्यवस्थापिका सभा में देवदासियों के सम्बन्ध में एक बिल पेश हुआ था परन्तु बहुत लोगों ने इसे धर्म में हस्तक्षेप करना बता इसका विरोध किया और वह बिल पास न हुआ। सुना है कि महाराजा बड़ौदा ने अपने राज्य के मन्दिरों में देवदासियों को बनाना भविष्य के लिए बन्द कर दिया है।

शाक्त सम्प्रदाय का भैरवी-चक्र, पंचमकार आदि, जिनका मध्यकाल में बहुत जोर होगया था—और उत्तर भारत, नैपाल आदि में जो अब भी एक बिखरी रीति के स्वरूप में देखने को मिलते हैं, गम्भीरता से—धार्मिक व्यभिचार की दृष्टि से मनन करने योग्य विषय है। नैपाल में, सुना गया है कि भैरवी-चक्र और नैशोत्सव अब भी होते हैं और बहुत लोग उसी के मानने वाले हैं। वहां जाति पांति का और गम्य अगम्य का कोई भेदभाव नहीं है। तन्त्र ग्रन्थों में बहुत ही कुत्सित बातों का वर्णन किया गया है। 'शिवउवाच', 'पार्वत्युवाच', 'भैरवउवाच' इत्यादि नाम लिख कर सर्वथा नीति, धर्म और सभ्यता से हीन

बातें लिखी गई हैं। 'कालीतन्त्र' में लिखा है—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुन मेव च।
एते पंच मकारास्युर्मोक्षदाहिं युगे युगे॥

अर्थात्—मद्य, मांस-मछली, मुद्रा (पूरी, कचौरी, बड़े) और मैथुन—ये पांच मकार युग-युग में मोक्ष देने वाले हैं।

'कुलार्णव तन्त्र' में लिखा है—

प्रवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
वृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णा पृथक् पृथक्।

अर्थात्—भैरवी चक्र में प्रवेश होने पर सब वर्ण द्विजाति हैं। भैरवी चक्र से बाहर सब पृथक् पृथक् हैं।

'ज्ञानसंकलनी तन्त्र' में लिखा है——

"मातृयोनि परित्यज्य, विहरेत सर्वे योनिषु।
वेदशास्त्र पुराणानि, सामान्यगणिका इव॥"
"एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुल वधूरिव।
अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरन्तु संगमः॥

अर्थात्—माता की योनि को छोड़कर सब योनियों में विहार करे, वेदशास्त्र मामूली वैश्या के समान हैं। सिर्फ अकेली शम्भु मुद्रा ही कुलबधू की तरह गुप्त है।

केवल इस ऊटपटांग वाक्य को बोलकर 'भैरवी-चक्र' में कोई भी किसी भी स्त्री से समागम कर सकता है। इस वाक्य का यह अर्थ होता है कि "मैं भैरव हूँ और तू भैरवी है, आओ हमारा तुम्हारा संगम हो।" साधारणतया जिन स्त्रियों को

अपवित्र स्पर्श माना है—उन रजस्वलाओं से भी व्यभिचार करने को इन तन्त्र ग्रन्थों में पवित्र माना गया है।

'रुद्रयामल तन्त्र' में लिखा है :—

"रजस्वला पुष्करं तीर्थं, चाण्डाली तु स्वयं काशी,
चर्मकारी प्रयागः स्यात् रजकी मथुरा मता।
अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता..................

अर्थात् रजस्वला से सङ्गम करने से पुष्कर स्नान फल, चाण्डाली के समागम से काशी-यात्रा, चमारी के समागम से प्रयाग-स्नान धोबिन के समागम से मथुरा-यात्रा और कंजरी के साथ समागम करने से अयोध्या तीर्थ करने का फल मिलता है। ये लोग मद्य को 'तीर्थ' मांस को 'शुद्धि' और 'पुष्प' मछली को 'जलतुम्बिका' मुद्रा को 'चतुर्थी' और मैथुन को 'पंचमी' के नाम से पुकारते हैं। ये लोग अन्य धर्म वालों को आपस में 'कंटक, विमुख, भ्रष्टपथ' नाम से पुकारते हैं।

भैरवी चक्र में पहुँच कर ये लोग धरती या काठ के पटड़े पर कुछ सतिया जैसा पूर कर उस पर शराब का घड़ा रख कर पूजा करते हैं और "ब्रह्मशापं विमोचय" मन्त्र पढ़कर उसे पवित्र बनाते हैं—फिर एक भीतरी कोठरी में एक स्त्री और एक पुरुष को नङ्गा करके स्त्री का नाम देवी, पुरुष का नाम महादेव धरते हैं। उनके हाथ में तलवार देते हैं—फिर उनकी गुप्तेन्द्रिय की पूजा की जाती है। तदन्तर उन दोनों को एक एक प्याला

शराब दी जाती है—फिर उन्हीं के झूठे पात्रों में सब पीते हैं। फिर प्रधान आचार्य 'भैरवोऽहं, शिवोऽहं' कहकर एक पात्र पीता है—उनके बाद सब पीते हैं। इसके अनन्तर मांस, आदि एक बड़े बरतन में रख कर सब एक साथ खाते पीते हैं और शराब पीते रहते हैं। उसके बाद पंचमी चलती है। सब मतवाले होकर चाहे जिसकी बहन, कन्या, स्त्री, माता से व्यभिचार करते हैं। यहाँ तक कि स्वपुत्री का भी परहेज नहीं होता। कभी-कभी बहुत मतवाले होने पर मारपीट जूतम पैजार भी हो जाती है। किसी किसी को उल्टी हो जाती है—जो वमन को खा लेता है वह सिद्ध माना जाता है। लिखा है :—

'हलां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायांगणिकागृहेषु।
........................विराजते कौलव चक्रवर्ती ॥'

अर्थात्—जो कलाल के घर बोतल पर बोतल शराब गटक जाय और रात को वेश्या के जा सोवे, वह कौलव चक्रवर्ती है।

'ज्ञानसंकलनी तन्त्र' में लिखा है—

'पाश बद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः'।

इसका वे यह अर्थ करते हैं—कि लोकलाज, शास्त्रलाज, कुललाज और देशलाज की पाशों में बंधा है, वह जीव है। निरद्वन्द्व है, वह शदा शिव है। इन लोगों में दश महाविद्यायें प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक 'मातङ्गी' विद्या है। उसका अभिप्राय है "मातरमपि न त्यजते।"

'गुप्त-साधन तन्त्र' में लिखा है—

नटी कापालिका वेश्या रजकी नापितांगना।
ब्राह्मणी शूद्र कन्या च तथा गोपाल कन्यका ॥
मालाकारस्य कन्या च नव कन्याः प्रकीर्तिता।

अर्थात्—नटनी, कपालिकी, वेश्या, धोबिन, नायन, ब्राह्मणी, शूद्र की लड़की, ग्वालिन की बेटी, मालिन की बेटी, ये नौ कन्याएँ साधना में काम आनी चाहियें।

इसके सिवा यह श्लोक भी है—

"स्वशक्त्या अयुत पुण्य परशक्तिप्रपूजने।"
"ततो वेश्माधिका ज्ञेया..............."

"श्रुणु देवी विशेषेण उत्तराम्नाय हेंतवे' (ताराभक्तिसुधार्णव)।
"वेश्यागारेश्मशानेवा..............(पुरश्चरण चन्द्रिका)॥"

शङ्कराचार्य से पहले इस मत का भारत में बहुत जोर रहा था, और यह बात मैंने किसी प्रामाणिक लेख में पढ़ी थी कि पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथजी का मन्दिर पूर्व में भैरवीचक्र था। कृष्ण बलदेव के बीच में पत्नी या माता के स्थान में बहन सुभद्रा की स्थापना ब्राह्मण अत्यजों का एक पक्ति में भातभोजन, उच्छिष्ट का विचार न करना और मन्दिर पर के अश्लील-गंदे चित्र इस बात के प्रमाण हैं।

पुराणों में देवता और ऋषियों के व्यभिचारों को पवित्र और निर्दोष रूप दिया गया है। विष्णु ने वृन्दा के साथ उसके पति का रूप धर कर व्यभिचार किया। इन्द्र ने चन्द्रमा की सहायता से गौतम की पत्नी अहल्या के साथ व्यभिचार किया

अनेक देवताओं ने कुमारी अवस्था में कुंती से व्यभिचार किया। इसी प्रकार विश्वामित्र ने मेनका से, पाराशर ने सत्यवती से, यहाँ तक कि पशुओं तक से व्यभिचार करने के घृणास्पद उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। श्रीकृष्ण को एक आदर्श व्यभिचारी के रूप में हिन्दुओं ने उपस्थित किया है। इन सब बातों से हिन्दू समाज की भावना इस क़दर गंदी हो गई कि कोई कवि, लेखक या नाट्यकार, चाहे भी जितनी अश्लील रचना करे, या चेष्टा करे, यदि उसमें राधा या कृष्ण का नाम आ जाता है तो वह प्रायः क्षमा के क़ाबिल मानी जाती है, और निर्दोष तो वह है ही।

कैसी शर्म की बात है कि मनुष्य अपनी पाप वृत्तियों और कुत्सित भावनाओं का धर्म की आड़ लेकर पूरा करने में अपना बड़ा भारी कौशल समझता है। कभी किसी ने यह नहीं विचार किया कि राधा वास्तव में श्रीकृष्ण की पत्नी न थी, वह पर-स्त्री थी। इसके सिवा श्रीकृष्ण के अपनी पत्नियाँ भी थीं। महाभारत में हमें इसका कुछ भी उदाहरण नहीं मिलता। परन्तु हिन्दुओं की मनोवृत्तियां इतनी गंदी हो गई हैं कि वे कृष्ण के व्यभिचार की लीलाएँ बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ सुनते हैं।

पशुओं से स्त्रियों को मैथुन करने की आज्ञा भी एक अद्भुत और भयानक धर्म की आज्ञा है। अश्वमेध यज्ञ में यजमान की स्त्री को घोड़े से मैथुन कराना पड़ता था। कहा जाता है

कि एक राजा की रानी इस भयानक कर्म के करने से मर गई थी। बहुधा साधू महात्माओं को इस प्रकार के कुकर्म करते देखा जाता है।

कुछ दिन पूर्व कलकत्ते के गोविन्द भवन नामक मारवाड़ियों के एक भक्ति आश्रम के एक पहुँचे हुए भक्त हीरालाल के पाप का घड़ा बीच बाज़ार फूटा था, और यह प्रमाणित हो गया था कि इस नराधम ने सैकड़ों हा भले घर की बहू-बेटियों से उस मन्दिर मे व्यभिचार किया है। यह उस जाति की बेग़ैरती का नमूना था कि उस भयानक अपमान को वे लोग चुपचाप पी गए। पर इस व्यभिचार की जड़ में वह कुत्सित भावना है जो धर्म-व्यभिचार सम्बन्धी साहित्य के मनन से स्त्री पुरुषों के मन पर होती है। यह व्यक्ति अपने को कृष्ण और स्त्रियों को गोपी कह कर उनकी वृत्तियों को अवसर पाते ही चलित करता था······और फिर उन्हें पतित करता था। स्त्रियाँ स्वभाव ही से चलित चित्त तो होती ही हैं, शीघ्र ही बहक जातीं। फिर इस पापिष्ठ ने कुटनियां भी बहुत सी लगा रखी थीं। जब 'चाँद' के 'मारवाड़ी अंक' का हमने सम्पादन किया तो इस धर्म सांड के चित्र को प्राप्त करने में हमें बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ा। अंत में एक उच्च-कुल की महिला के गले में पड़े हुए लाकेट से वह चित्र हमें बड़ी कठिनाई से मिला, और उस महिला ने उसका नाम न प्रकाशित करने को हमें शपथ बद्ध किया। यदि पाठक आज्ञा दें तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि

यह पतित आदमी अब भी ब्रह्मनिष्ठ समझा जाता है। और अब कुछ स्त्रियों की उसके प्रति कृष्ण भावना और जार सम्बन्ध है, यह मारवाड़ी समाज की पतित नैतिक स्थिति के कारण ही है।

प्रायः ब्राह्मण लोग पूजा पाठ का ढोंग करने नित्य ही सद्-गृहस्थों में जाते रहते हैं—खास कर मारवाड़ी परिवारों में। स्त्रियां इनसे पर्दा भी नहीं करतीं। ये लोग खूब चुस्त, चालाक चंट और लुच्चे होते हैं। हँस हँसकर स्त्रियों से बातें करते, उनका हाथ देखते, भविष्य बताते और इस बहाने उनके गुप्त भावों को जान अपना उल्लू साधते हैं। ऐसे जनेऊधारी अनेक सांडों को हम जानते हैं। पीछे वही पाजी इस काम की दलाली भी करने लगते हैं और दूसरों के संदेश और संकेत पहुँचाया करते हैं।

मन्दिर व्यभिचार प्रवृत्ति के बड़े भारी केन्द्र हैं। कुछ दिन पूर्व दिल्ली के एक मन्दिर का रहस्योद्घाटन हुआ था। मन्दिर में प्रवेश करने के द्वार के पास एक स्थान नियत है जहां जाने वालों के जूते उतार कर रख लिये जाते हैं। इस काम पर स्वेच्छा से एक युवक ने अपने आपको पेश किया। वह प्रत्येक आगन्तुक के जूते लेकर रखता, और चलती बार दे देता था। बहुत सी युवतियां भी मन्दिर में आती थीं। जब से असहयोग आन्दोलन चला और पंजाबी-संस्कृति दिल्ली में मिली, दिल्ली में निर्भय विचरनेवाली युवतियों की काफी भीड़ होगई है।

सायंकाल को चांदनी चौक में जिसका जी चाहे आकर देख ले, प्राय: युवतियाँ बेधड़क खोमचे वाले की दुकानों के सामने स्टूलों पर बैठकर पत्ते चाटा करती हैं। या 'हर माल साढ़े तीन आने' की दुकानों पर घंटों खड़ी सौदा पटाया करती हैं। इनमें बहुत सी उच्च-कुल की लड़कियाँ होती हैं। अस्तु ! वह युवक यह चालाकी करता कि जिस युवती को यह पसंद करता उसके जूते में ५) का नोट रख देता। जब वह स्वीकार हो जाता तो सौदा पट जाता—नहीं तो अकस्मात की बात कह दी जाती।

एक महापुरुष अपना नया तजुर्बा सुनाने लगे—कि मैं तो यमुना जी के रास्ते पर जहां बग़ीची है जा डटता हूँ। वहीं से नित्य ही हज़ारों स्त्रियां गुज़रती हैं। जिसे पसंद किया, ५) का नोट गिरा दिया, यदि उसने उठा कर चुपचाप रख लिया तो संकेत करके ज़रा अलग किया और सब बातें तै करलीं—नहीं तो अपना नोट उठाया और दूसरा शिकार देखा।

मन्दिरों से स्त्रियों का उड़ाया जाना, उन पर बलात्कार करना नई बात नहीं, नित्य के काम हैं। और इनके मूल में भी वही धर्म व्यभिचार की छाप है, जो ऐसे कर्मों की ओर विचार करने को मनुष्य को खींचता है।

(७)

अपराध

हत्या, व्यभिचार और दूसरे कार्य, जिनका जिक्र हमने पिछले अध्यायों में किया है, अपराध ही हैं। परन्तु इस अध्याय में हम इससे भिन्न अपराधों की चर्चा किया चाहते हैं, जो कि 'धर्म के नाम पर' प्रायः होते रहते हैं।

इनमें सबसे प्रथम हम घरों में आग लगाने की बात कहेंगे। प्रायः ज्योतिषी और स्याने नामधारी भण्ड पाखंडी लोग स्त्रियों को फुसला कर यह अपराध कराते हैं। स्त्रियों को सन्तान न होने पर बड़ी चिंता हो जाती है और प्रायः देखा गया है कि इसके लिए वे उचित अनुचित सभी उपायों को काम में लाती रहती हैं। इस प्रकार के अपराधों की भित्ति भी धार्मिक अंध-विश्वास ही है। जिला मुजफ्फरनगर और सहारनपुर के इलाकों में प्रायः स्याने लोग यही नुस्खा बताया करते हैं और बहुधा इन जिलों के देहातों में ऐसे कांड हुआ करते हैं।

सहारनपुर के ज़िले के एक गांव में एक स्त्री के बच्चा नहीं होता था। स्त्री अग्रवाल वैश्य जाति की थी और सम्पन्न घर की थी। उसने स्याने को बुलाया। उसने हिसाब-किताब देख-भाल कर कहा कि किसी के छप्पर में आग लगादो तो देवता प्रसन्न होकर पुत्र प्रदान कर देंगे। उसने एक दिन अवसर पाकर दुपहरी में एक ग़रीब के झोंपड़े में आग लगा दी जिसने आधा गांव भस्म कर दिया। कई पशु और आदमी भी जल गये।

कुछ दिन पूर्व बुलन्दशहर के कोर्ट में एक नीच जाति की स्त्री ऐसे ही अपराध में गिरफ्तार की गई थी। उसने एक स्याने के कहने से छः घरों में निरन्तर आग लगाई, अन्त में पकड़ी गई और उसे दण्ड दिया गया।

इसी प्रकार आग लगाने की घटना अनूपशहर के पास हम ने स्वयं देखी थी, जिससे सारा गाँव भस्म हो गया था। उसमें ५ गायें, २ बैल, ६ पशुओं के बच्चे, २ स्त्रियां तथा एक बालक जल मरा था। अन्य नुक़सान की गणना पृथक्।

बच्चों की चुपचाप हत्यायें भी प्रायः ऐसे मामलों में होती रहती हैं।

जिला मुजफ्फरनगर के एक कस्बे में कुछ दिन पूर्व एक रोमाँचकारी घटना हो गई थी। वहां के एक सम्पन्न प्रतिष्ठित जैन परिवार में सन्तान नहीं होती थी। किसी स्याने ने स्त्री को बहका दिया कि यदि वह छः खूनों में स्नान करे तो उसे पुत्र

अवश्य होगा । वह स्त्री उसका पति और श्वसुर आदि पूरा कुटुम्ब इस भयानक कार्य के लिये तैयार हो गया। उसका एक नौकर कम्बो जाति का था। उसका छः वर्ष का एक पुत्र था। वह पांच सौ रुपये लेकर अपने पुत्र को स्वयं मारने को तैयार हो गया। नियत समय पर घर के सब व्यक्ति एकत्रित हुए। लड़के के ज़ालिम बाप ने साग काटने की दराँत से उसकी गर्दन काटना शुरू किया और उसका खून निकाला गया। इसके बाद वह पिचाश उसकी लाश को जङ्गल में दफ़ना आया। परन्तु इस भयानक काम से उसे जाड़ा-बुखार जैसा चढ़ आया और वह थर-थर कांपता बालक को दफना कर एक डाक्टर साहब के पास गया और दवा मांगी । डाक्टर ने उसकी चेष्टाओं से सन्देह किया कि इसने कोई काण्ड किया है। उसने प्रथम तो कहा कि मेरा लड़का मर गया, फिर सब बातें बयान कर दीं। पुलिस में खबर की गई और लड़के का बाप, स्त्री उसका पति आदि कई आदमियों का चालान हुआ । स्याने को भी पुलिस ने पकड़ा था, पर उसे इधर-उधर के लोग शिफारिश करके छुड़ा लाये और वह नीच इस केस से बिल्कुल ही बच गया। सेशन में केस चला। अपील में सब छूट गये, सिर्फ उस बालक के पिशाच पिता को काला पानी हुआ।

जिला मेरठ में एक स्त्री अदालत में इस अपराध में लाई गई थी कि उसने ३ साल की बच्ची को जिन्दा गाड़ दिया था। उसे ज्योतिषी ने यह बताया था कि ऐसा करने से उसके बच्चे

जो हो-हो कर मर जाते थे, अब न मरेंगे।

दो-तीन साल पूर्व दिल्ली में सब्जी मण्डी में एक वैश्य व्यापारी ने दूसरी शादी की थी। परन्तु दो-तीन वर्ष बीतने पर भी उसके सन्तान नहीं हुई थी। उसे किसी मुसलमान स्याने ने बता दिया कि किसी बच्चे के खून से स्नान कर करले तो बच्चा हो जायगा। उसने अपनी जिठानी के लड़के को मार डाला और घर में ही उसे गाड़ दिया, पीछे बात खुल गई और मामला पुलिस में गया। स्त्री को सजा मिली।

सिकन्दराबाद में एक जैन स्त्री के बच्चे हो-होकर मर जाया करते थे। किसी स्याने ने कहा—तुझे मसान लग गया है। इस बार बच्चा हो जाय तो उसे जमीन में गाड़ देना, फिर सब बच्चे ज़िन्दा रहेंगे। उसने पैदा होते ही अपना बच्चा ज़मीन में गाड़ दिया। दैवयोग से उसी समय एक कुम्हार वहां मिट्टी खोदने गया और बच्चा बरामद किया। मामला अदालत में गया और बड़ी दौड़-धूप के बाद स्त्री रिहा कराई गई।

अनूपशहर में एक स्त्री के संतान नहीं होती थी। किसी स्याने ने कहा कि किसी आदमी का खून चाट ले। उसने किसी पड़ौसी के बच्चे का हाथ काट खाया और खून पी गई। बहुत लोग इकट्ठे हुए, मगर मामला रफा दफा हो गया।

कुछ पेशेवर ठग आम तौर से साधुओं का वेष धरे घूमा करते हैं, जो धर्म के नाम पर बड़ी बड़ी कार्रवाइयां कर गुजरते हैं।

एक कस्बे में एक सर्राफ के पास दो साधू आए। सर्राफ साधुओं का बड़ा भक्त था। साधुओं की उसने खूब सेवा-सुश्रूषा की। सा' ओं ने कहा—बच्चा हम तुम पर महाप्रसन्न हैं। तू जितना हो सके सोना ले आ। हम उसे दूना बना देंगे। सर्राफ ने कहा महाराज, पहले चमत्कार दिखाइये। उन्होंने एक तोला सोना लेकर आग में रख दिया। उसी में एक तोला तांबा रख दिया। सर्राफ तो उनकी सेवा-चाकरी में लगा और साधुओं ने तांबे के स्थान पर चुपके से सफाई के साथ एक तोला सोना रख दिया। जब गल जाने पर निकाला तो दो तोला सोना था। लाला जी लोटनकबूतर हो गये और तुरन्त साठ तोले सोना साधुओं के सामने ला धरा। साधुओं ने बराबर तांवा मिला उसे आग में रख दिया और सफाई से सोना निकाल लिया। इसके बाद निश्चिंताई से लाला से कहा—बच्चा, सुलफा और रबड़ी हमारे वास्ते लाओ। लाला इस काम में लगे और साधु चुप-चाप चम्पत हुए।

एक साधु महाराज हाथ से धातु नहीं छूते थे, परन्तु सोना बना दिया करते थे। उनके पास कोई भस्म थी। उसे चुटकी भर कर तांबे पे डाला और तांबा सोना बना। एक बार एक सेठ जी चक्कर में आ गये। महीनों सेवा की और अन्त में साधु को प्रसन्न किया। उन्होंने वचन दिया—हम तुझे सोना बना देंगे। उन्होंने उसकी स्त्री के गहने मंगवा लिये और अवसर पा चलते बने। अन्त में पकड़े गये।

एक साधु ने एक हलवाई भक्त से एक चिलम तम्बाकू मांग कर उसी के सामने भर कर पिया। कुछ देर बैठ चिलम वहीं उलट कर चल दिये। हलवाई ने देखा—राख में सोना चमचमा रहा है। दौड़े और दण्डवत प्रणाम कर बाबा को ढूंढ़ लाये। महीनों सेवा की—टाल-टूल करते रहे, अन्त में लाला का २००) रुपये का माल हथिया कर चम्पत हुए।

कुछ दिन पूर्व दिल्ली में एक भारी मामला होगया था। एक प्रसिद्ध वैद्यराज के पड़ोस में एक धनी लाला जी रहते थे। उनकी सुन्दरी स्त्री पर इनकी दृष्टि थी। वैद्यजी की स्त्री कुटनी का काम करती थी। वह दूसरी स्त्रियों को फंसा-फंसा कर उनके पास ले आती थी। इस स्त्री को भी इसने फांसा। अतः वैद्यजी और इस स्त्री ने मिल कर सेठ जी को ठगने का षड्यन्त्र रचा। सेठ जी बीमार रहते थे। एक बार उन्हें देखने को वैद्यजी बुलाये गये। एक आदमी पहिले ही से ठीक कर लिया गया था—वह थोड़ी ही देर बाद वहाँ पहुँच गया। वैद्यजी ने अनजान की तरह पूछा—"तुम कौन हो, और क्या चाहते हो?" उसने कहा—"महाराज, मैं बड़ा दुखी था—मेरा रोग किसी भाँति आराम ही न होता था। अन्त में मैंने आत्मघात करने की सोची—और एक दिन बहुत सवेरे उठकर मैं लाल किले की फ़सील पर चढ़ गया, और चाहा कि कूद कर जान दे दूँ, कि भैरोंजी प्रकट हुए और कहा—ठहर जान मत दे, यह औषधि ले, इसमें से आधी खा, आराम हो जायगा। मैंने वह आधी दवाई खाई

और खाते ही अच्छा हो गया।"

वैद्यजी ने चमत्कृत होकर कहा—'वह आधी दवा कहाँ है ?" तब उसने वह दवा वैद्य जी को दे दी—उन्होंने वह गिरा दी। इस पर उसने बिगड़ कर कहा—"वाह, यह आपने क्या किया ? दवा गिरा दी।" तब वैद्यजी ने कहा—"चिंता न करो—चलो—फिर भैरोंजी का आवाहन करें और औषधि प्राप्त करें।"

यह कह कर दोनों गये। लाला जी बड़े प्रभावित हुए। उनकी कुल्टा स्त्री ने उन पर और भी रङ्ग चढ़ा दिया था। दूसरे दिन जब वैद्यजी फिर गये तो लाला ने बड़े उत्सुक होकर पूछा—"कहो—कल क्या देखा ?"

उन्होंने कहा—"भैरों ने साक्षात् दर्शन दिये। इस आदमी पर भैरों बाबा प्रसन्न हैं, और यह जिसे चाहे दर्शन करा सकता है।"

लाला ने कहा—"तब हमारा भी सङ्कट काटना चाहिए।" ग़रज़ उन दोनों पाखण्डियों ने लाला को उल्लू बना कर उससे १०-१२ हजार रुपया झाँसा। उनकी पत्नी इस काम में उनकी सहायक हुई। कई बार उन्होंने भैरों के दर्शन लाला को भी कराए। कुछ दिन व्यतीत होने पर जब लाला को रोग दूर न हुआ—उल्टा बढ़ता ही गया तो उन्होंने घबराकर कहा—"अब क्या करना होगा ?" वैद्यजी अनुष्ठान के लिये ५०० रुपये और मांगे।

लाला के कोई सम्बन्धी आर्यसमाजी थे। उन्हें इस बात की कुछ सीध लग गई कि ये धूर्त लाला को ठग रहे हैं। उन्होंने पुलिस में इसकी इत्तला की। पुलिस ने ५०० रुपये के नोटों पर निशान करके उन्हें दिये कि जाकर वैद्यजी को दे दो। उन्होंने वैद्यजी को लाला के घर बुलाया और लाला को जल्द अच्छा करने का वचन लेकर वे नोट उन्हें दे दिये। वैद्यजी उन्हें जेब में डाल ज्यों-ही बाहर निकले कि पुलिस ने उन्हें धर लिया। मुकद्दमा चला, और वैद्य जी दिल्ली छोड़ ऐसे गायब हुए कि जैसे गधे के सिर से सींग। पुलिस कई दिनों तक वारण्ट लिए फिरती रही।

बम्बई में एक सम्पन्न मारवाड़ी व्यक्ति एक स्त्री को मेरे पास लाया और कहा कि यह मेरी साली है। इसे बायगोले की बीमारी है। उस स्त्री ने बहुत कहने सुनने पर भी पेट नहीं देखने दिया, केवल नाड़ी देख कर ही दवा देने का अनुरोध करती रही। लाचार उसका बयान सुनकर ही औषधि व्यवस्था करदी गई। कुछ दिन तक वह नित्य आता रहा और तेज़ दवा देने का अनुरोध करता गया। फिर वह एकाएक नहीं आया। दो-तीन दिन बाद हमें मालूम हुआ कि वह पकड़ा गया है। उसकी साली को गर्भ था। बच्चा पैदा होने पर उसके सिर में कील ठोक कर उसे घड़े में रख कर गटर (मोरी) में डाल दिया। भंगी ने देखकर पुलिस में इत्तला की। पुलिस को देखते ही वे लोग घर से नासिक भाग गये। मार्ग में स्त्री को सन्निपात हो गया और

वह पुलिस के सामने बयान देकर मर गई। वह व्यक्ति फ़ौजदारी के सुपुर्द हुआ।

एक साधु एक सद् गृहस्थ के यहाँ आता-जाता था। घर के लोग उसकी बहुत आवभगत करते थे। घर में एक जवान क्वाँरी लड़की थी। एक जवान आवारागर्द उसका भाई था। इस भाई को सोना बनाने की विधि सिखाने का उसने झाँसा दिया और इसे इस बात पर राज़ी कर लिया कि उस पापी के पास अपनी बहन को फुसला कर ले आये। लड़के ने ऐसा ही किया। पीछे जब लड़की के व्याह की चर्चा उठी तो साधु ने कहा—यह लड़की हमारे साथ बिगड़ चुकी है, इसका व्याह नहीं हो सकता। लोग बदनामी के डर से बहुत डरे, अन्त में भाई की सहायता से वह उसे लेकर भाग गया और फिर पकड़ा गया।

यहाँ हम विस्तार भय से अधिक न लिख कर इस विषय को समाप्त करते हैं।

(८)

कुरीति और रूढ़ियां

गुलाम और नामर्द क़ौमें हमेशा कुरीतियों और रूढ़ियों की दास हुआ करती हैं। हिन्दू जाति में भी इन दोन चीज़ों की कमी नहीं। ये दोनों ही बातें अन्य जङ्गली और पतित जातियों के समान हिन्दुओं में धर्म-विश्वास पर ही निर्भर हैं।

प्रत्येक जाति के जीवन का आधार प्रगतिशीलता है। जिसमें प्रगतिशीलता नहीं—वह जाति ज़िन्दा नहीं रह सकती। हिन्दू जाति की प्रगति कब की नष्ट होगई है। अब यह जाति केवल मौत की सांस ले रही है। सनातन धर्म हमारी आत्मा में रम गया है और हम उसी गढ़े का सड़ा हुआ ज़हरीला पानी पी-पीकर मर रहे हैं, जिसमें नये जल के आने का कोई सुभीता ही नहीं है। यह सनातन धर्म २००० वर्ष से पुराना नहीं। पुराना होने पर भी मान्य नहीं। मैं इस सिद्धान्त को भी मानने से इन्कार करता हूँ कि जो कुछ पुराना है वह सब शुभ और माननीय है। मेरा कहना यह है कि जो कुछ हमारे लिए बुद्धिगम्य और शुभ है, वही हमारे लिए माननीय है। और धर्म तथा

जातियाँ वही ज़िन्दा रह सकती हैं—जो समय के अनुकूल अपनी प्रगति को तत्कालीन बनाये रक्खें।

हमारी सब से भयानक कुरीति विवाह-पद्धति है। इस प्रथा की आड़ में अनगिनत पाप, पाखण्ड, अपराध और अन्याय धर्म के नाम पर किये जा रहे हैं।

विवाह का मूल उद्देश्य स्त्री-पुरुष का परस्पर आत्म-भावना का नैसर्गिक विनिमय है, जिसके आधार पर प्रकृति का प्रवाह चल सकता है। स्वभाव ही से स्त्री-पुरुष दोनों के मिलने पर एक सत्व बनता है। अतः समय पर उपयुक्त स्त्री-पुरुषों का परस्पर सहयुक्त होना आवश्यक है।

परन्तु यह सहयोग वैज्ञानिक भित्ती पर है। इसका सब से मोटा उदाहरण तो यही है कि सपिण्ड और सगोत्र स्त्री पुरुष संयुक्त नहीं हो सकते। यह बहुत गम्भीर और वैज्ञानिक बात है कि भिन्न रक्त और वंश को मिलाकर संतानें उत्पन्न की जायें। परन्तु वह विज्ञान तो प्रायः नष्ट कर दिया गया है।

विवाह की प्रथा में सबसे ज्यादा बेहूदा और अधर्म की परिपाटी 'कन्यादान' की परिपाटी है। पिता कन्या को वर के लिए दान देता है। हिन्दू विवाह में यह सर्वाधिक प्रधान बात है। मैं यह कहता हूँ कि कन्या अपने पिता की मेज़ कुर्सी या क़लम-दवात नहीं, उसकी ख़रीदी हुई सम्पत्ति भी नहीं; मकान, दुकान या जायदाद भी नहीं, सोना चाँदी या अन्न भी नहीं—फिर उसे कन्या का दान करने का किसने अधिकार दिया, क्या

कन्या के कोई आत्मा नहीं ? वह जीवित नहीं ? उसे अपनी लाभ हानि पर, जीवन की समस्या पर विचार करने का ज़रा भी अधिकार नहीं ? शोक तो यह है कि आर्य समाज की पुत्रियां भी विवाह के अवसरों पर पिताओं द्वारा दान की जाती हैं। आर्यसमाज अपने को वैदिक-धर्मी होने की तो हाँकता है पर मैं डंके की चोट उसे चैलेंज देता हूँ कि वह साबित करे कि कन्यादान का विधान कौन से वेद मंत्र में है ? वेद में तो साफ़ ये शब्द मिलते हैं कि—

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'

सनातन धर्मियों के विवाह की अपेक्षा मुझे आर्यसमाज के विवाह ज्यादा भ्रष्ट और बेहूदे प्रतीत होते हैं और मैं उन्हें कदापि सहन नहीं कर सकता। सनातन धर्म की कन्यायें—बालक, अभागिनी, अबोध, मूर्खा और पिता की सम्पत्ति होती हैं। पिता वर का स्वागत करता है, आसन देता है, गोदान करता है, मधुपर्क देता है, पाद्य और आचमनीय देता है, तब कन्या को भी दे देता है। इसके बाद वर-वधू सप्तपाद आदि भी करते हैं। इन सब बातों में जैसा भी पातक या अनीति हो, वह क्रम-बद्ध तो है पर आर्यसमाज की पुत्रियां युवती हैं, पढ़ी लिखी हैं। विवाह के प्रश्नों पर उन्हें विचार करने का अवसर दिया जाता है। बहुधा कन्या को भावी वर से बोलने और पसन्द करने का अवसर भी दिया जाता है। विवाह की वेदी पर स्वयं

कन्या वर का स्वागत करती और अर्घ्यपाद्य आदि देती हैं। इसके बाद पिता कन्या-दान देता है। और तब प्रतिज्ञायें या सप्तपदी की क्रियायें की जाती हैं। अजी जनाब ! मैं यह पूछता हूँ, जब कंया, दान ही करदी तब प्रतिज्ञाओं का क्या महत्व है ? यदि वर-वधू प्रतिज्ञाओं से इनकार करदें तो क्या कन्या का कन्यादान वापस हो सकता है ? आर्यसमाज के पंडितगण वेदमंत्रों की व्याख्या करके वर-वधू को प्रतिज्ञाओं के अर्थ समझाने की चेष्टा करते हैं। सनातनधर्मी तो एक रस्म पूरी करके छुट्टी लेते हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि आर्यसमाज की विवाह-पद्धति ज्यादा आपत्ति-जनक है।

यदि मैं यह कहूँ कि मनुस्मृति, जो वास्तव में मनु की बनाई नहीं है—इस भयानक अनर्थ की जड़ है, जो बेजान साधारणतया यह कहा जाता है कि स्मृतियाँ वेद के अनुकूल चलती हैं, पर विवाह के मामलों में इस स्मृति ने वेद के नियमों के विरुद्ध ही नियम बनाए हैं। यह स्मृति ८ प्रकार के विवाहों को बयान करती है। प्रथम विवाह आर्ष है जिसमें कन्या का पिता अलंकृता कन्या को श्रेष्ठ वर को दान करता है। दूसरा विवाह ब्राह्म है जिसमें पिता एक बैल का जोड़ा लेकर वर को कन्या देता है। तीसरा विवाह दैव है जिसमें पुरोहित को दक्षिणा के तौर पर दे दी जाती है। चौथा गन्धर्व है जिसमें वर कन्या चुपचाप पति-पत्नी भाव से रहने लगते हैं। एक विवाह राक्षस है जिसमें रोती-कलपती बालिका का बलपूर्वक हरण करके जबर्दस्ती ले

जाया जाता है।

इन नियमों में ग़ौर करने की बात यह है कि कन्या को अपना वर स्वयं चुनने का गंधर्व विवाह को छोड़कर कहीं भी अधिकार नहीं दिया गया। गंधर्व विवाह की बात हम पीछे करेंगे। प्रथम तो हम दैव विवाह पर ग़ौर किया चाहते हैं कि एक आदमी जो यज्ञ कराने आया है, उसे बहुत-सी दान-दक्षिणा की चीज़ें दी जाती हैं, उसमें कन्या भी दी जा सकती है। यह केवल नियम ही नहीं, हम ऐसे उदाहरण दे सकते हैं, जिसमें राजाओं ने अपनी सुकुमारी राज-पुत्रियां पुरोहितों को दे डाली हैं।

अच्छा, राक्षस विवाह को किस आधार पर विवाह माना जाता है? जबर्दस्ती, रोती, कलपती कन्या को बलपूर्वक हरण करके ले जाना अपराध है कि ब्याह? भीष्म जैसे ज्ञानी और महावीर ने भी यह अपराध किया था, वह काशीराज की तीन कुमारियों को जबर्दस्ती युद्ध करके छीन लाये थे। न कन्या का पिता और न कन्या ही इसके अनुकूल थीं। मैं जानना चाहता हूँ कि यदि भीष्म को ताज़ीरात हिन्द की दफा ३६६ के अनुसार मजिस्ट्रेट के सामने अभियुक्त बनाकर खड़ा किया जाय तो वे चाहे भी इस कर्म को धर्म की दुहाई दें, वे सात वर्ष की सख्त सजा पाये बिना नहीं रह सकते। और कोई भी आदमी न नैतिक दृष्टि से और न सामाजिक दृष्टि से किसी कन्या को इस प्रकार हरण कर सकता है, फिर यह कुकर्म विवाह तो हो

ही नहीं सकता।

गंधर्व विवाह का हमें प्राचीन इतिहास में एक ही उदाहरण मिलता है, शकुन्तला और दुष्यन्त का। यह गांधर्व विवाह कितना बेहूदा और नीच कर्म था—इसका ज्ञान हमें इसी विवाह से मिल जाता है। हमें कालिदास की रसीली कवित्वमयी लच्छेदार बातों से कुछ सरोकार नहीं, हम तो असली कथा पर ही ग़ौर किया चाहते हैं।

दुष्यन्त जैसा श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजा शिकार को जाता है। वहां कंव के आश्रम में पहुँचता है। कंव वहां नहीं हैं, उनकी पोष्य-पुत्री शकुन्तला है। वह उस युग के धर्म के अनुसार राजा का आतिथ्य करती है। राजा इस सुयोग से लाभ उठाकर बेचारी कुमारी बालिका को फुसलाकर वहीं उसका कौमार्य नष्ट करके और बहुत से सब्ज-बाग़ दिखाकर घर चल देता है। जब ऋषि आते हैं और उन्हें सब बातें मालूम होती हैं, तो वे यही निर्णय देते हैं कि इसे उसके यहां पहुँचा आओ, और जब वह वहां जाती है तो दुष्यन्त साधारण लम्पट की भांति निर्लज्जता से कह देता है कि यह कौन है, इसे मैं जानता भी नहीं। अन्त में वह अपनी माता के पास जाकर दिन काटती है जिसे उसी की भाँति एक ऋषि भ्रष्ट कर चुका था, और जिसका फल वह खुद थी। बहुत दिन बाद, राजा को वृद्ध होने पर भी जब पुत्र नहीं होता तब वह खुशामद कर कराकर ले आता है।

यह असल कथा है। मेहमान का इससे ज्यादा नीच कर्म कौनसा हो सकता है कि वह जिसके घर में अतिथि बने उसी

की कुमारी कन्या को उसकी अनुपस्थिति में कुछ ही घंटे में बहकाकर न केवल उसे विवाह पर राजी करे, प्रत्युत तुरन्त ही उसका कौमार्य भी नष्ट कर दे, और फिर उसके पहिचानने से भी इनकार कर दे।

द्रौपदी, सीता और दमयन्ती आदि के स्वयंवरों की चर्चा भी हमें प्राचीन पुस्तकों में मिलती हैं। परन्तु वे नाम-मात्र के स्वयंवर थे। सभी में पिता की एक शर्त थी, उसे पालन करके कोई भी उस कन्या को प्राप्त कर सकता था। यदि रावण और वाणासुर जनक के धनुष को तोड़ पाते तो वे अवश्य ही सीता को प्राप्त करने के अधिकारी हो सकते थे—चाहे सीता उन्हें चाहती या नहीं।

स्त्रियों की बिना रुचि जाने, उनको अपने जीवन पर विचार करने का अवसर दिये बिना, पुरुषों की स्वेच्छा से उनका विवाह कर देना यह स्त्री जाति मात्र का घोर अपमान है, और इस कुकर्म ने हिंदू जाति की स्त्रियों के सब सामाजिक अधिकार छीन लिये। उन्हें निरीह पशु के समान बना दिया। इसी कन्यादान की प्रथा के कारण पति की सम्पत्ति में उनका कुछ भी अधिकार नहीं। विधवा होने पर वे केवल रोटी-कपड़ा पा सकती हैं, मानों वे घर की कोई बूढ़ी निकम्मी गाय भैंस हैं। संसार के किसी भी सभ्य देश की स्त्री विवाह होने पर हिंदू स्त्री की भाँति बेबस नहीं हो जाती। इसका कारण यही है कि वह दान की हुई वस्तु है, और उसके प्राण, आत्मा और शरीर पर उसके

पति का पूर्णाधिकार है।

बाल-विवाह इस कुकर्म का दूसरा स्वरूप है। आज ढ़ाई-करोड़ विधवायें इस कुकर्म के फल स्वरूप हिंदुओं की छाती पर बैठी ठण्डी सांसें ले रही हैं। कोई जहर खाकर दुःख से छुटकारा पाती हैं, कोई भंगी, कहार, मुसलमान के साथ भाग-कर खानदान का नाम रौशन करती हैं !!

कन्या-विक्रय एक भयानक अपराध तो है ही, वह भीषण पाप भी है। परन्तु इस अपराध और पाप की जिम्मेदारी उन बदनसीब पशु-प्रकृति पिताओं पर नहीं जो लोभ और स्वार्थ में अन्धे होकर अभागिनी, अज्ञान बालिकाओं को बेच देते हैं। इसके असली जिम्मेदार तो वे धर्म शास्त्र हैं जिन्होंने बचपन की शादी को धर्म कर्म बताया, जिन्होंने रजस्वला कन्या को देखना नर्क का कारण बताया—जिन्होंने कन्याओं को दान करने की चीज बनाया, जिन्होंने पुत्रियों को समाज का अभिशाप—संतानों की निषिध वस्तु ठहराया। यदि ये दूषित और लानत भेजने योग्य धर्मशास्त्र ऐसे बेहूदे विधान न करते तो आज पिता अभागिनी बालिकाओं को बेचने के लिए स्वाधीन न हो सकते थे। कन्यायें भी मनुष्य के अधिकारों को प्राप्त करतीं, और लाभ हानि पर विचार करतीं।

आज लाखों कन्यायें बूढ़े खूसटों के अत्याचार का शिकार बनती हैं। दो-एक रोमांचकारी आंखों देखी घटना हम यहाँ बयान करना आवश्यक समझते हैं। एक करोड़पति सेठ

ने जिन्हें दीवान बहादुर का ख़िताब था, ६५ वर्ष की अवस्था में एक ११ वर्ष की लड़की से विवाह करने की ठानी। सुना गया कि लड़की बीकानेर राज्य भर में एक मात्र सुन्दरी बालिका है। कन्या को मृत्यु शैया पर हमने देखा था, इसमें तनिक भी अत्युक्ति न थी। कन्या की सगाई उसके पिता ने एक अन्य दहेजुआ आदमी से साढ़े चार हजार रुपया लेकर कर दी थी। परंतु सेठ ने उसके ग्यारह हजार दाम लगा दिये। इसलिये सगाई सेठ को चढ़ा दी गई। इस पर वह व्यक्ति जिसे सगाई चढ़ गई थी, आया और पंचों से फरियाद करता फिरा, परंतु कोई भी पंच सेठ के विरुद्ध न जा सकता था। वह व्यक्ति हमारे पास आया, और हमने उसे नुसख़ा बता दिया। हमने उसे सलाह दी कि अमुक मन्दिर में अन्न-जल त्याग धरना देकर बैठ जाओ। ५०) पुजारी को चुका दो और कह दो, जब तक मैं अन्न जल न ग्रहण करूँ, ठाकुरजी को भोग न लगाया जाय। यही किया गया और दोपहर तक नगर भर में अफ़वाह फैल गई कि आज ठाकुर जी के पट बन्द हैं दर्शन नहीं होते, न भोग लगता है, उसका कारण यह है कि फरियादी ने वहाँ धरना दिया है। गरज़ भीड़-की-भीड़ वहां आने लगी और पंचायत जुड़ी—फैसला यह हुआ कि उसके रुपये वापस दे दिये जायं। सेठ ने पंचों को ग्यारह हजार की लागत की एक बगीची मय अहाते के पंचायत के नाम देकर यह फैसला खरीदा था। विवश वह रुपया ले घर में बैठ रहा। तब नगर के युवकों ने

लकड़ी के मामा को बुला कर उसे आगे कर दावा दायर कर दिया। वह महायुद्ध के दिन थे। सेठ ने एक लाख के वार बौण्ड खरीद कर अपने हक़ में फ़ैसला ले लिया। और तत्काल विवाह की तैयारी होने लगी। चीफ कमिश्नर पहाड़ पर थे, तार द्वारा अपील की गई। वहां से विवाह रोकने की आज्ञा भी आई—पर विवाह जङ्गल में एक वृक्ष के नीचे कर दिया गया।

बालिका के विवाहित होने के ६ महीने बाद सेठजी मर गये। उनकी मृत्यु के एक मास बाद वह प्रथम रजस्वला हुई और ३ मास बाद एकाएक रात को २ बजे हमें बुलाया गया। देखा वह मर रही थी और उसे ज़हर दिया गया था। दूसरे दिन धूमधाम से उसका शव निकाला गया और उस पर अशर्फियां लुटाई गई।

यह एक उदाहरण है, परन्तु हमारे पास एक-से-एक बढ़कर हज़ारों उदाहरण हैं। इन बालिकाओं में न तो प्रतिकार का ज्ञान है, न शक्ति। वे चुपचाप इस अत्याचार का शिकार बन जाती हैं, और इसका परिणाम हिन्दू जाति का सामूहिक नैतिक पतन होता है। ऐसी लड़कियां बहुधा नीच जाति वालों या बदमाशों के साथ भाग जाती हैं—जो इस प्रकार के मामलों की ताक में लगे रहते हैं।

मैं ऐसी अनेक छोट-छोटी रियासतों की रानियों को जानता हूँ कि जिन्हें उनके लम्पट रईस पतियों ने बुढ़ापे में ब्याहा और जवानी में छोड़ मरे। और वे खुली व्यभिचारिणी और स्वेच्छाचारिणी की भांति विचरण करती हैं। एक बार एक

युवक ने हमें बीस हजार रुपया भेंट करने चाहे थे, यदि मैं उस की माता को जो उस समय मेरी चिकित्सा में थी, विष देकर मार डालता; और उसका कारण यह था कि वह युवक के मृत पिता की चौथी स्त्री थी। जो आयु में उस युवक की स्त्री से बहुत कम थी और एक मुनीम से खुल्लमखुल्ला फँसी थी, तथा लाखों रुपया उसे लुटा रही थी। एक रियासत में हमारे पुराने परिचित एक मित्र महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी थे, जो उनके मरने पर महारानी के भी प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। कुछ दिन पूर्व हमें दैवयोग से उस स्टेट में जाने का अवसर हुआ। तब युवक राजकुमार अधिकार-सम्पन्न हुए थे चर्चा चलने। पर उन्होंने अपने क्रोध को रोककर कहा यदि वह सूअर यहां आयगा तो मैं अपने हाथ से उसे गोली मार दूंगा।

वृद्ध विवाह संसार के सभी देशों में होता, परन्तु बराबर की स्त्रियों के साथ। पोती के समान बालिकाओं को इस प्रकार संसार की कोई भी सभ्य जाति कुर्बान नहीं करती।

इस कुप्रथा के कारण अनेक बूढ़े खूसट धन के लालच में गुणवती कन्यायें पा जाते हैं, और दरिद्र युवक रह जाते हैं।

एक कामुक रईस ने सत्तर वर्ष की आयु में विवाह करने की इच्छा प्रकट की। और जब हमने उससे इसका कारण पूछा तो कहा—हमारे मरने पर कोइ रोने वाला भी तो चाहिए। इस पतित रईस की बातें सुनकर मिश्र के पुराने राजाओं का हमें स्मरण हो आया जो अपनी समाधियों में जीवित स्त्रियों को

दफ़नाया करते थे।

बाल पत्नियों के भयानक कष्टों को हमें देखने के बहुत अवसर मिले हैं। इस कुप्रथा मे हमारा बहुत कुछ शारीरिक और मानसिक ह्रास हो रहा है। बड़ी उम्र के लोगों की पत्नियों की जो अपना दूसरा और तीसरा विवाह करते हैं, बड़ी दुर्दशा होती है। वे प्रायः पति संसर्ग से भागा करती हैं और अन्त में उनके साथ जो व्यवहार किया जाता है, उसे बलात्कार के सिवा कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

एक चालीस वर्ष के पुरुष ने ग्यारह वर्ष की बालिका से शादी की थी। कुछ दिन बाद ही उसके गर्भ रह गया तो उसका आप्रेशन करके बच्चा निकाला गया, और वह लड़की सदा के लिए अपङ्ग हो गई।

एक रोमांचकारी घटना हमें मालूम है कि ग्यारह साल की लड़की का विवाह पैंतीस वर्ष के एक व्यक्ति से हुआ था। यह व्यक्ति प्रतिष्ठित और सम्पन्न था। उसने हठपूर्वक बालिका को बुला लिया। उसकी माता ने विदा करने से पूर्व कृत्रिम रीति से उसके गर्भाशय को बड़ा करने की चेष्टा की। जिससे उसके शरीर से रक्त का प्रवाह जारी हो गया। जब वह पति के पास गई और उसने सहवास किसी भी भांति स्वीकार न किया, तब क्रोध में आकर उसने उसे तिमंजले पर से सड़क पर फेंक दिया, और वह कुछ देर बाद मर गई।

बंगाल के अन्तर्गत नोआखाली नामक स्थान से एक ऐसा

लोमहर्षक समाचार आया है जिसने रात-दिन घटित होने वाली पैशाचिक घटनाओं से अभ्यस्त जनता को भी चकित कर दिया है। वहां की अदालत में कमला नाम की १४ वर्ष की लड़की ने अपनी करुण कहानी सुनाई। लड़की का कहना है कि तीन-चार वर्ष पहले हरिपद विश्वास नामक एक व्यक्ति के साथ उसका विवाह हुआ था। वह ससुराल ही में रहती थी। उसके पति के चार भाई और थे। वे सब अविवाहित थे। एक साल पहिले की बात है कि सास ने उससे अपने देवर ननीपद के साथ अवैध सहवास करने के लिये कहा। उसने स्वीकार नहीं किया। उसने बहुत हठ किया, पर वह मानी। इसका फल यह हुआ कि सास ससुर ने उसे मारना शुरू कर दिया? पाशविक व्यवहार की भी कोई सीमा होती है? कुछ भी हो, लड़की ने जब अपने पति से ये सब बातें कहीं तो वह क्रुद्ध हो अपने माता पिता का साथ छोड़कर किसी दूसरे मकान में चला गया। पर फिर वापस आकर उसके पति ने भी अपने माता-पिता की बात का समर्थन किया। तब से उसका पति, सास, ससुर तथा देवर सबने मिलकर उसके ऊपर अत्याचार शुरू कर दिया। उसके हाथ पांव बांधकर वे लोग उसे कांटेदार लकड़ी से पीटा करते थे; कभी-कभी पीठ पर छुरी से मारते थे, कभी घर की छत से उसे नीचे लटकाकर उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया जाता था, ताकि रो न सके। एक दिन उसके देवर ननीपद के कहने पर उसकी सास ने पिसी हुई मिर्च बलपूर्वक

उसके गुप्त अङ्ग के भीतर डालदी। असह्य वेदना से वह छटपटाने लगी। लगातार तीन-दिन तक उसे खाने को नहीं दिया गया। सास-ससुर जिस कमरे में सोते थे, ननीपद भी उसी में सोता था। लड़की स्वयं दूसरे बिस्तर में सोती थी। ननी ने बल-पूर्वक उसका सतीत्व नष्ट करना चाहा। इस समय उसकी आत्महत्या करने की इच्छा हुई। जब वे लोग उसे पीटते तो वह रोती, उसका रोना सुनकर पड़ोस के सम्भ्रांत लोग आते, वे लोग उन्हें गालियाँ देकर निकाल देते। उसे केवल एक जून भात खाने को मिलता था। दाल, तरकारी वगैरह कुछ नहीं दिया जाता था। सरसों के कच्चे तेल के साथ वह भात खाती। एक दिन उसका देवर ननी लगातार कई घण्टे पीटने के बाद उसके मुँह के भीतर कपड़ा ठूँसकर उसे पकड़कर उसके बाप के मकान में डाल गया और भाग कर चला गया। इसके पहिले एक दिन उसकी सास और देवर ने खिड़की में लगी हुई लोहे की छड़ के साथ एक रस्सी से उसका गला, हाथ और पांव कसके बाँध दिये, उसने अदालत को रस्सी के दाग़ दिखाये। लड़की ने अदालत में यह भी कहा कि दूसरे देवर भी उसे बीच-बीच में तङ्ग किया करते थे। घर का सब काम उसी को करना पड़ता था। सास उसे किसी काम में बिलकुल सहायता नहीं देती थी। उसके ससुर का चरित्र भी अच्छा नहीं था, अक्सर रात को कुलटा स्त्रियां उसके पास आती थीं। उसने कहा कि जवानी में उसकी सास का चरित्र

भी अच्छा नहीं था—ऐसा उसने सुना है।

सर हरीसिंह गौड़ के सहवास बिल पर कुछ दिन बड़ी भारी दिलचस्पी ली जाती रही। इस क़ानून के अनुसार १६ वर्ष से कम आयु की विवाहिता पत्नी से भी कोई सहवास न कर सकेगा। यदि ऋतुमती होने के बाद ही कम उम्र में लड़कियों के साथ सम्भोग किया जायगा तो उनकी सन्तान अवश्य ही कमज़ोर होगी, पर सनातनधर्मी ब्राह्मणों को कमज़ोर सन्तान उत्पन्न करने से कुछ हानि नहीं। उनकी सन्तान जन्म-श्रेष्ठ ही ठहरी, इसलिए वे ऋतु काल से पूर्व ही किसी सद्वंश की कन्या का पाणीग्रहण कर अपना और दस पूर्वजों तथा दस आगामी वंशजों का इस प्रकार इक्कीस पीढ़ी का उद्धार कर डालना चाहते हैं।

पाराशर स्मृति के सातवें अध्याय में लिखा है कि लड़की के जो माता पिता या बड़े भाई बारह साल की आयु में प्रथम उसका विवाह नहीं कर देते वे नर्क को जाते हैं जो ब्राह्मण इससे बड़ी आयु की कन्या से विवाह करे उसे जाति से बाहर निकाल देना चाहिए और इस काम के लिए उसे यह प्रायश्चित करना चाहिए कि वह तीन वर्ष तक भीख माँगकर जीवन निर्वाह करे।

विचारने की बात तो यह है कि मर्द ४० या ५० वर्ष की आयु होने पर भी १० १२ साल की लड़की से शादी कर लेता है, पर शास्त्रों को इसमें एतराज़ नहीं। केवल लड़कियों का विवाह

ऋतुमती होने से पूर्व हो जाना चाहिए और यदि उनका पति मर जाय तो उन्हें जीवन भर विधवा बनकर बैठा रहना चाहिए।

ये पतित हिन्दू इस कल्पित नर्क से भय खाकर अपनी पुत्रियों का सर्वनाश करते हैं, पर बेजोड़ विवाह के गुनाह पर ज़रा भी इनके पापिष्ट कलेजे नहीं थर्राते। बहु-पत्नी की प्रथा रईसों में ही नहीं सर्वसाधारण में भी बहुधा देखने को मिलती है। सर्व साधारण में एक पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना बहुधा इस आधार पर किया जाता है कि प्रथम पत्नी से सन्तान नहीं हुई। पर ये धूर्त स्वार्थी क्या इस बात की परीक्षा भी करते हैं कि दोष उनमें है या उनकी स्त्री में।

राजा और रईसों के घरों में बहु-पत्नी की प्रथा उनके लिए शान की बात है। हमें बहुत से बड़े घरों के हालात मालूम हैं, जहां प्रति वर्ष दो-चार खून या गुप्त हत्यायें केवल स्त्रियों के कारण ही होती हैं। कुछ दिन पूर्व एक बड़े राजा की चिट्ठियां छापी गई थीं जिसने ज़बरदस्ती एक रईस की स्त्री को हथिया लिया था और कुछ रुपया देकर उसका सर्वाधिकार प्राप्त करना चाहा था। इसमें महत्वपूर्ण बात यह थी कि ब्रिटिश सरकार के एक उच्चाधिकारी ने इस सौदे को पटाने में हाथ-बटाया था।

इन राजा और रईसों के घरों में कैसे महापाप होते हैं और कैसी-कैसी वीभत्स घटनायें होती हैं इस पर अब तक बहुत

कुछ प्रकाश पड़ चुका है। परन्तु जब तक पत्नी के लिए ऐसे पतित की आज्ञायें मानना और सौत के आधीन होना धर्म की बात समझी जाती है तब तक इस कुकर्म से स्त्री जाति को छुटकारा नहीं मिल सकता।

अनमेल विवाह एक पाप है—परन्तु हिन्दू समाज में वह एक ऐसे बन्धन में है कि जैसी भी अनमेल स्थिति में बद्ध स्त्री-पुरुष हों उनका धर्म है कि वे उसमें सन्तुष्ट हों। इस अनमेल विवाह के कारण लड़कियों को बहुत से कष्ट उठाने पड़ते हैं, जिनके फलस्वरूप गर्भाशय और जनेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों से भारत की प्रायः प्रत्येक स्त्री दुःखी है।

विधवाओं से देश के कुछ भाग में ऐसा अत्याचार पूर्ण व्यवहार किया जाता है कि देखते छाती फटती है। स्त्री शिक्षा की दशा असन्तोष-जनक होने से उनकी हालत और भी दुखःदाई हो जाती है। यद्यपि लड़कियों को पढ़ाना पाप समझने वाले अब बहुत कम रह गये हैं, फिर भी उनको शिक्षा देकर उन्हें स्वावलम्बी होने की योग्यता प्राप्त कराने वाले माता पिता उङ्गलियों पर गिनने योग्य हैं। इसलिए अधिकतर स्त्रियाँ अज्ञान में फँसी हैं और यही उनके कष्टों का एक भारी कारण है।

कुछ लोगों का कहना है कि इन सब कुप्रथाओं का कारण हमारी राजनैतिक पराधीनता और आर्थिक दरिद्रता है। यद्यपि यह कथन सम्पूर्णतया सत्य नहीं फिर भी कुछ अंशों तक तो इस

में सत्य है ही। परन्तु असल बात तो यह है कि हमारी कुप्रथाओं की परम्परागत संस्कृति और उन्हें क़ायम रखने की हमारी खोटी प्रवृत्ति ही हमारी राजनैतिक और आर्थिक दरिद्रता का असली कारण है। लकीर का फ़कीर होना, रूढ़ियों का गुलाम होना हमारा स्वभाव है और इसी कारण हम आंख मूँदकर उन घृणास्पद और निकम्मी प्रथाओं को मानते रहे हैं जिनमें कुछ भी सार नहीं, और उन नई प्रथाओं को हम स्वीकार नहीं कर सकते जो हमारी उन्नति और रक्षा के लिए बहुत ज़रूरी है।

सती होना हिन्दू समाज में किसी ज़माने में उच्च कोटि का हिंदू धर्म समझा जाता था, और शताब्दियों तक स्त्रियां ज़बर्दस्ती सती होती रहीं। जिनके वर्णन अत्यन्त रोमांचकारी हैं। हिंदू विधवा का जीवन कैसा रोमांचकारी, कथा पूर्ण, कष्टों का समुद्र और शुष्क है यह प्रत्येक हिंदू को विचारने के योग्य है। यहाँ हम एक अभागिनी विधवा का—जो समाचार पत्रों में सती कह कर प्रसिद्ध की गई थी थोड़ा सा संक्षिप्त हाल लिखते हैं—

दो वर्ष की आयु में एक धनी घर में उसकी सगाई हुई और ८ वर्ष की आयु में वह विधवा हो गई। इसके बाद वह संयुक्त परिवार के १७ स्त्री-पुरुषों के बीच में रहने लगी। वह शीघ्र ही उन सब की गालियाँ और तिरस्कार एवं मारपीट की अधिकारिणी हो गई। सबसे अधिक अत्याचार उस पर सास और विधवा

ननद का था। उसने बड़े कष्ट से ६ साल काटे। उसके ऊपर यौवन आया और संसार का सबसे बड़ा संकट उसके सन्मुख आया। उसके जेठ की उन पर कुदृष्टि पड़ी। वह नीच और लम्पट आदमी था। उसके भाव को ताड़ कर वह अभागिनी भयभीत रहने लगी, और अन्त में उसने कूए में डूब मरने का इरादा कर लिया। इस इरादे को जान कर उसकी सास ने उसे क्रोध से पकड़ कर उसका हाथ उबलते हुए चावलों में डाल दिया और कहा—अब समझ कि मरना कैसा है? अभागिनी स्त्री उस पीड़ा को सह गई और बराबर काम करती रही। अन्त में न जाने कहाँ से उस ने कुछ प्राचीन सतियों के कुछ वर्णन सुने और उसे सती होने की धुन सवार हो गई। एक प्रकार के उन्माद में ग्रसित होकर उसने अपने सती होने की इच्छा बल पूर्वक सब पर प्रकट करदी।

यह जानकर उसकी सास ने प्रसन्न होकर कहा—"तू धन्य है, जा मेरे पुत्र को सुखी कर।" उसके लिए ब्याह के वस्त्र मंगवाये गये और खूब गहने पहनाये गये। गाँव भर में चर्चा फैल गई। सब उसे गा-बजाकर जंगल में ले गये। उसी के पाथे हुए उपलों से चिता चुनी और उसे उस पर सुला दिया गया। उसका एक हाथ और सिर छोड़ सारा शरीर ढाँप दिया गया था। हाथ में फूँस का पूला दे उसमें आग लगा दी। क्रिया कर्म वाले पण्डित ज़ोर-ज़ोर से मंत्र पढ़ने और घी डालने लगे—ज़ोर के बाजे बजने लगे, और जय-जय कार होने लगा। धूएँ का

तूमार उठ खड़ा हुआ। इस प्रकार वह अभागिनी जलकर खाक हो गई और सती कहलाई। पीछे पुलिस ने बहुत से लोगों का चालान किया।

श्रीमती डा० मुथ्युलक्ष्मी रेड्डी ने एक बार व्यवस्थापक सभा में कहा था—"हिंदू क़ानून के अनुसार एक साथ कई स्त्रियों से विवाह किया जा सकता है। इस लिए जब पति लड़की को अपने घर बुलाना चाहे, उसके माता-पिता हरगिज़ इनकार नहीं कर सकते, क्योंकि सदैव ही इस बात का भय बना रहता है कि लड़के की दूसरी शादी न कर दी जाय।"

शारदा विवाह बिल के विरोध में कुम्भ कोकनम के स्वामीकुल मठ के जगतगुरु शंकराचार्य ने घोषणा की थी कि 'यह बिल हिंदू धर्म के उन पवित्र सिद्धांतों के सर्वथा प्रतिकूल है, जिन्हें सनातनी ब्राह्मण बहुत प्राचीन काल से मानते चले आए हैं। पवित्र सिद्धांतों में इस तरह का हस्ताक्षेप हम किसी कारण से भी सहन न कर सकेंगे।

अब यद्यपि सती की प्रथा क़ानूनन उठा दी गई है, पर अदालतों के सामने हर साल ग़ैरक़ानूनी सती का एक न एक मुक़द्दमा आता ही रहता है। प्रायः बहुत सी विधवायें जीवन के कष्टों से ऊबकर वस्त्रों पर मिट्टी का तेल डालकर जल मरती हैं। ख़ासकर बंगाली अख़बार वाले उन सब को सती का रूप देते हैं, और खूब रंगकर उनका वर्णन छापा करते हैं।

कुछ दिन पूर्व बनारस में अखिल भारत वर्षीय ब्राह्मण कानफ्रेंस हुई थी जिसमें भारत के सब भागों के तीन हज़ार शास्त्री एकत्रित हुए थे। उनमें गहन संस्कृत भाषा के सत्रह प्रस्ताव पास हुए जिनमें एक यह भी था कि लड़कियों का विवाह आठ साल की आयु में कर दिया जाय। अधिक से अधिक नौ या दस साल तक अर्थात् ऋतुमती होने से पूर्व तक।

पर्दा हिंदू समाज पर एक अभिशाप है। जिसे दूर होने में अभी न जाने कितनी देर है। हमने स्त्रियों को सब तरह से असहाय कर रखा है।

बड़े घरों में हमें जाने का बहुधा अवसर मिलता रहता है। एक प्रतिष्ठित ज़मींदार के घर का हाल सुनिए—

मकान की दूसरी मंज़िल पर एक कमरा लगभग १२ गुणा ६ फीट था। तीन तरफ सपाट दीवारें और सिर्फ एक तरफ एक दरवाज़ा है जो कि एक लम्बी गेलरी में है। कमरे में सदैव ही अंधकार रहता है। इसमें एक पुरानी दरी का फ़र्श पड़ा है, जो शायद साल में एकाध बार ही झाड़ा जाता है। दीवारें काली हो गई हैं और उनमें सदैव ही दुर्गंध भरी रहती है। घर भर की स्त्रियाँ इसी में दिन भर बैठी रहती हैं, और भांति भांति की बातें करती हैं। घर की बूढ़ी गृहणी वहीं पीढ़ी पर बैठती है, उसे घेर कर तीन बेटों की स्त्रियाँ, दो विधवा बेटियाँ, कई चचेरे भाइयों, भतीजों की स्त्रियाँ, एक दो दासियाँ, सब वहीं भरी रहती हैं। कुछ तम्बाकू खाती हैं, वे फ़र्श पर योंही थूकती

रहती हैं। बच्चे १५–२० बेतरतीबी से योंही खेलते कूदते फिरा करते हैं। कभी रोते, कभी मचलते, कभी शोर मचाते और कभी ठूंस-ठूंसकर खाते और वहीं सो रहते हैं।

ये स्त्रियां दिन भर कुछ काम नहीं करतीं। उनका ख़ास काम पतियों की आज्ञा पालन करना या सोना है। वे सब घर में ठाकुर-पूजा करती हैं, भोजन के समय पति को खिला कर खाती हैं। कभी पति से बोलती नहीं, उसके सामने आती नहीं, दिन-भर पान कचरतीं, मिठाइयाँ खातीं या सोती रहती हैं, उनकी बातचीत के विषय—गहना, कपड़ा, बच्चों की बीमारियां, बच्चे पैदा होने की तरकीबें, गंडे, तावीज़, मन्त्र, तन्त्र, साधु, पति को वश में करने की तरकीबें आदि होते हैं, एक दूसरे की निन्दा, कलह यही उनकी नित्य-चर्या हैं।

मे प्रायः सब अपढ़ हैं। एक पढ़ी लिखी बहू है, उसकी उन सबके बीच में आफ़त है। बुढ़िया सबको हुक्म के ताबे रखना चाहती है, और पढ़ना-लिखना भ्रष्टता का लक्षण समझती है।

सब स्त्रियाँ प्रायः रोगिणी हैं। दो बहुएं क्षय से मर गई हैं। एक की प्रसूति में मृत्यु हुई है। जब वृद्धा से कहा गया कि आप लोगों को धूप और खुली हवा में रहना चाहिये और परिश्रम करना चाहिये, तब वृद्धा ने कुछ नाराजी के स्वर में कहा परिश्रम नीच जाति की स्त्रियां करती हैं या भले घर की बहू-बेटियाँ ?

जिस स्त्री को खाँसी और ज्वर है उसके दोनों फेफड़े क्षय

रोग से आक्रान्त हैं। पर वह अपने बच्चे को दूध बराबर पिलाती है। बच्चा भी अत्यन्त कमजोर है, वह रात-भर रोया करता है। वह स्त्री अपना कष्ट भूलकर उसे रात भर गोद में लेकर हिलाती रहती है।

स्त्रियां और बच्चे इस घर में बराबर मरते ही रहते हैं। पर और नये पैदा होते ही रहते हैं। यह सिलसिला बराबर जारी रहता है।

वे स्त्रियां इस गंदे अन्धेरे घर में प्रसन्न हैं। उन्हें पतियों के प्रति शिकायत नहीं। वे खुली हवा में घूमना अधर्म समझती हैं, पति के साथ घूमना या बात करना तो एक दम पाप की बात। वे हमारे उपदेशों की उपेक्षा और हँसी में टाल देती हैं। कभी-कभी बहस भी करने लगती हैं। वे अपने दुर्बल काले रोगी बालकों को प्यार करती हैं—उन्हें उन पर अभिमान है, एक स्त्री का जो पढ़ी-लिखी है, घर भर अपमान करता है—क्योंकि उसके अभी पुत्र नहीं हुआ है और वह उनकी गोष्ठी से अलग रहती है।

जो बहुएँ मर चुकी हैं, उन्हें वृद्धा भाग्यवान समझती हैं, और अपनी विधवा बेटियों को अभागा कह कर रोया करती हैं।

बुढ़िया को पुत्र-पौत्रों को इधर-उधर बेतरतीबी से रोते-मचलते सोते-बैठते, चीखते-चिल्लाते देख कर बड़ा आनन्द आता है। वह कल्पना नहीं कर सकती कि जगत में उससे ज्यादा सुखी कोई दूसरा भी है या नहीं।

बच्चों का पालन कुसंस्कारों और रूढ़ियों के कारण ऐसा गर्हित हो गया है कि अपने जन्म के बाद पहले वर्ष में प्रत्येक तीन बच्चों में एक मर ही जाता है। भारतवर्ष के बच्चे पशुओं और कीड़ों से किसी भांति श्रेष्ट नहीं समझे जाते। एक बार कृष्ण-मूर्ति ने अपने एक व्याख्यान में कहा था—

"भारतवर्ष में बच्चे किस भाँति खुश रह सकते हैं? मैं तुम से अपनी ही बचपन की ओर दृष्टि फेंकने को कहता हूँ, मैं नहीं कह सकता कि मेरा बचपन सुखपूर्ण था। मैं अपने माता-पिता के विरुद्ध कुछ नहीं कहता। क्योंकि जो कुछ हुआ वह प्राचीन प्रथा के अनुसार चलने का फल था। भारतवर्ष में बच्चे जितनी बुरी हालत में रहते हैं, संसार के और किसी देश में वे वैसे नहीं रहते। भारतवर्ष में बच्चा सब से अभागा प्राणी है। न उसका कोई अलग स्थान होता है और न चित्त विनोद का कोई साधन, वह जब चाहता है सो जाता है। बच्चों की देख भाल का कोई ख्याल नहीं रखता। तुम और मैं इन बातों को भली भाँति जानते हैं। यह सच है कि जाहिर में बच्चों को बहुत प्यार किया जाता है। पर बच्चे के कल्याण के लिए उस प्यार में कोई नियम नहीं है······बच्चा गन्दगी, कीचड़ और धूल में रहकर बड़ा होता है। मेरा हमेशा से यह विचार था कि मेरा फिर से भारत में जन्म हो, पर अब अगर मेरे लिये ऐसा अवसर आवे तो मैं हिचकूँगा, क्योंकि अमेरिका और योरोप में बच्चे जैसे प्रसन्न रहते हैं उसका आपको ख्याल भी नहीं है। बचपन

ही वास्तव में आनन्दित रहने का समय है, क्योंकि बड़े होने पर हम उसकी याद किया करते हैं। यही अवस्था है जब बालक के भाव दृढ़ हो जाते हैं। आजकल भारत में चारों तरफ जैसी निन्दनीय बातें फैली हुई हैं इनके बीच में रह कर बच्चा कैसे खुश रह सकता है।"

कन्यायें सन्तान रूप कलंक हैं, यह भावना हिन्दुओं की नीच प्रकृति की परिचायक है। राजपूत लोग घमण्ड से कहा करते हैं कि हम किसी को दामाद नहीं बनायेंगे और इसलिए वे जन्मते ही कन्याओं को मार डाला करते थे। परन्तु अब भी लोग ऐसा करते हैं। जाटों में भी ऐसी प्रथा प्रचलित है, और यह तो मानी हुई बात है कि लड़की पैदा होते ही घरवालों के मुँह लटक जाते हैं—मानो कोई बड़ा भारी अपशकुन हो गया हो। लड़कियाँ बहुधा घरों में अवज्ञा और अपमान में पला करती हैं। बहुत सी कन्यायें बाल-काल में मर जाती हैं। बंगाल में अनेक कन्यायें दहेज की कुप्रथा के कारण जल मरी हैं। ऐसी हत्याओं की कथा ऐसी करुणापूर्ण है कि उन क्रूर, कमीने, माता-पिताओं तथा जाति-बन्धनों और कर्म-बन्धनों के प्रति बिना तीव्र घृणा हुए नहीं रह सकती। प्रायः लड़कियों को प्यार करते समय भी मरने की गाली दी जाती है। पर बेटे के लिए ऐसा कहना घोर पाप है।

अछूतों का प्रश्न तो खुला प्रश्न है। उन्हें हिन्दुओं ने बल-पूर्वक इतना गिरा दिया है कि वे हमारे सामने ही जीते जी नरक

भोग करते हैं।

आज महात्मा गान्धी के आत्मयज्ञ के कारण परिस्थिति में चाहे जैसी हलचल उत्पन्न होगई हो फिर भी यह सत्य है कि अभी तक हम अछूतों को पशुओं से बदतर समझते हैं। साइमन कमीशन को जालंधर के अछूत मण्डल ने जो अपना वक्तव्य दिया था उसका आशय इस प्रकार है—'हमें हिन्दू धर्म पर विश्वास नहीं। न हम उनके पाबन्द है। न हम हिन्दुओं से कोई राजनैतिक या सामाजिक सम्बन्ध रखते हैं जो हमें छूने से भी घृणा करते और छाया से दूर रहना चाहते हैं, यद्यपि वे हमें अपने साथ घसीटना चाहते हैं क्योंकि हमारे बिना उनका काम नहीं चल सकता।'

इस वक्तव्य में एक अक्षर भी असत्य या अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है और हम जब तक अपने समाज से उनकी आवश्यकताओं को निकाल न देंगे—हम अछूतों के मित्र नहीं बने रह सकते! लोग पुजारियों और पण्डितों पर नाराज हैं इस लिए कि वे उन्हें मन्दिरों में प्रवेश नहीं करने देते। परन्तु मैं कहता हूँ तुम उन्हें अपने रसोई घर में क्यों नहीं प्रविष्ट होने देते! कौन पुजारी तुम्हें रोकता है। क्या तुम मन्दिरों को रसोई घर से कम पवित्र समझते हो? इस का खुला अर्थ तो यह है कि तुम चिमटे से छूकर धर्म कमाना चाहते हो। दिमाग़ी-गुलामी की भरपूर बू उसमें है।

आज यदि देश के शहरों से पाखाने का वर्तमान सिस्टम

उठा दिया जाए और भंगियों को शिल्प, साहित्य, कला के काम सिखाए जायँ और किसी को भी भंगी की आवश्यकता न रहे तो अछूतों का उद्धार हो सकता है, अन्यथा नहीं।

पशुओं के पालन सम्बन्धी अज्ञान हमारा सामाजिक पाप है। बहुत से उपयोगी पशुओं से तो हम कुछ लाभ उठा ही नहीं सकते। भेड़ें, बकरियाँ, मुर्गे, मुर्गी आदि जानवर को पालने की तो हमारे धर्म की ही आज्ञा नहीं। हम दूध के पशु पालते हैं—कुछ परिन्दों को पालते तथा सवारी और खेती के पशुओं को पालते हैं—परन्तु इतने निकृष्ट ढंग से कि उसे महा-मूर्खता कहा जा सकता है।

प्राय: अधमरी गायें और बछड़े गली-गली भटकती दीख पड़ती हैं। कहने को हम बड़े भारी गो-भक्त हैं पर गो-भक्ति की असलियत तो हमारी गोशालाओं की दशा देखने से खुल जाती है। जैसा कष्ट पशु-पक्षी हमारे घरों में पाते हैं वैसा कष्ट मांसा-हारी लोग भी पशुओं को नहीं देते। किसी प्राणी को धीरे धीरे बहुत दिनों तक कष्ट देकर मार डालने की अपेक्षा एकदम खतम कर देना कम निर्दयता का काम है।

प्राय: गायों के बच्चे असावधानी से मर जाते हैं और उनकी खालों में भुस भरवा कर उनके सामने रख कर दूध दुहा जाता है। प्राय: बच्चों को कुत्ते फाड़ खाया करते हैं।

एक समय था कि साधारण गृहस्थियों के पास भी हजारों की संख्या में गायें रहती थीं। ईसा से ५०० वर्ष पूर्व कालयन

के काल में गौ १० पैसे को, और बछड़ा ४ पैसे को मिलता था। बैल की कीमत ६ पैसा थी, भैंस ८ पैसे में आती थी। और दूध १ पैसे में १ मन आता था, इसके २०० वर्ष बाद मसीह से ३०० वर्ष प्रथम जब भारत पर सम्राट चन्द्रगुप्त शासन करते थे, घी १ पैसे का २ सेर और दूध २५ सेर मिलता था। ईसवी सन् के शुरू में ४८ पैसे की गाय ६३ पैसे का बैल मिलता था। ५ वीं शताब्दी में विक्रमादित्य के राज्य में गौ ८० पैसे में और बैल ५१२ पैसे में मिलता था। अलाउद्दीन के जमाने में घी का भाव दिल्ली में ७४ पैसे मन था और अकबर के जमाने में १६५ आने मन।

यह वह जमाना था जब दूध बेचना पाप समझा जाता था। नगर बस्तियों के बाहर घने बन थे और उनमें गाय स्वच्छन्द चरा करती थीं। उन दिनों दीर्घायु, निरोगी काया और दुर्धर्षबल शरीर में रहता था। आज वे दिन न रहे। आज हमारे दुधमुहे बच्चों को भी एक बूँद दूध मिलना दुर्लभ हो रहा है। आस्ट्रेलिया की आबादी ४ लाख है और गायें १२ करोड़। पर भारत के ३४ करोड़ नर-नारियों में सिर्फ ४ करोड़। भारत में प्रतिवर्ष ४० लाख गाय बैल काटे जाते है। जिनमें केवल दो लाख भारतीय मुसलमानों के काम आते हैं। शेष ३८ लाख की खपत देश के बाहर होती है। इस समय गो-मांस का सब से सस्ता बाजार भारतवर्ष है। इस हत्या से घी दूध ही नहीं, अन्न

की पैदावार भी कम हो रही है। जंगल साफ़ हो रहे हैं, ज़मीन के रक़बे बढ़ रहे हैं, परन्तु मज़बूत गाय-बैलों की देश में बराबर कमी हो रही है।

आज घी दूध का जैसा अभाव देश में हो रहा है वह भारतीय इतिहास में पहले कभी नहीं देखा गया था। हम इस उन्नत विकसित बीसवीं शताब्दी के जीवन को धिक्कार भेजते हैं जब कि हमारे बच्चे और रोगी एक बूँद दूध और घी के लिए तरसते हैं रुपये का २ छटांक घी और १ रुपये सेर दूध बिकना एक ऐसा भयानक पाप एवं अपराध है जिसे किसी भी अवस्था में क्षम्य नहीं समझा जा सकता।

पशुओं का घर में वही स्थान होना चाहिए जो घरों में बच्चों का होता है। पशु पालना दया के ऊपर निर्भर नहीं, प्रेम के ऊपर रहना चाहिए। परन्तु हमारी पशु दया की रूढ़ि है, हम में त्याग नहीं।

अब हम छोटी छोटी कुछ कुरीतियों का दिग्दर्शन करके इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

संस्कारों को ही लीजिए, उपनयन, कर्णवेध, मुण्डन आदि सर्वत्र ही कुरीतियों का दौर-दौरा है! एक नाटक सा करके इन संस्कारों की रस्में पूरी की जाती हैं।

ग़मी होने पर बिरादरी भोज एक विचित्र और घृणास्पद बात है। घर वालों के आँसू बह रहे हैं। और पुरोहित और बिरादरी तर-माल उड़ा रहे हैं। पुरोहित की बन आती है, मृतात्मा

की सद्गति के बहाने गोदान, शैयादान जाने क्या क्या दान करवाते हैं। श्राद्धों की धूमधाम विवाह से बढ़ जाती है। क्या मृत-व्यक्ति को इससे वास्तव में कुछ लाभ पहुँचता है। गया पिण्ड और तर्पण करते देखा गया है; पण्डे किस भाँति हलाल करते हैं। क्या कोई यह भी पूछ सकता है कि इन सब दान धर्म का मृतव्यक्ति से कोई सम्बन्ध हो सकता है ?

(९)

पाखन्ड

पाखण्ड में सब से पहिला नम्बर मूर्ति-पूजा का है। दो हजार वर्ष से भी अधिक काल से इस पाखण्ड ने मनुष्य जाति को बेवकूफ बनाया है। आज संसार भर की सभ्य जातियों ने मूर्ति-पूजा को नष्ट कर दिया है। वह या तो कुछ जङ्गली जातियों में जो तातार के उजाड़ प्रदेश में हैं, अथवा अफ्रीका के सभ्य लोगों में है या फिर अपने को सबसे श्रेष्ठ समझने वाले हिंदुओं में प्रचलित हैं। यहाँ हम संक्षेप से इस मूर्ति-पूजा का इतिहास दिये देते हैं।

सबसे प्रथम मैं दृढ़ता-पूर्वक यह बता देना चाहता हूँ, कि प्राचीन-काल के हिन्दुओं का कोई मन्दिर न था और वे मूर्त्ति-पूजा नहीं करते थे। वेद में मूर्त्तिपूजा का कोई विधान नहीं है। वेद में उन देवताओं का भी कोई जिक्र नहीं है, जिन्हें इन पेशेवर गुनहगारों ने कल्पित करके झूठ और बेईमानी की दुकान खोली है।

हम आपको बता चुके हैं कि प्राचीन-काल में आर्य लोग यज्ञ करते थे और वही उनका प्रधान धर्म-चिह्न था। इसके बाद जब बौद्धों ने अपने-अपने उतुङ्ग काल में भारत की सीमाओं को पार करके चीन, तातार यूनान और उन प्राचीन प्रदेशों में धर्म-प्रचार के लिये भ्रमण किया जहाँ असंख्य भयानक देवताओं, जिनों, प्रेतों और भयानक अद्भुत शक्तिशाली जीवों का विश्वास प्रचलित था। तब वे मूर्त्ति पूजा की भावना को लेकर भारत में लौटे और लगभग इससे कुछ ही पूर्व सिकन्दर के साथ जो यूनानी भारत में आये वे भी अपने संस्कार छोड़ गये। जिसके फल स्वरूप प्रथम बौद्धों में और बाद को हिन्दुओं में मूर्त्ति-पूजा का प्रचार हो गया। यज्ञों के देवता मूर्त्तिमान बन कर बदल गये। वेद का 'रुद्र' जो वास्तव में वायु का नाम था 'गिरीश' या नीलकण्ठ बन गया। मण्डूक उपनिषद् में वर्णित अग्नि की सात जिह्वायें, काली, कराली, सुलोहिता, सुधूमवर्णी आदि शिव की पत्नियां हो गईं। केनोपनिषद् की उमा, हैमवती जिसने इन्द्र को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था—शिव की पत्नी कल्पित की गई। शथपथ ब्राह्मणों के असुरों को नाश करने वाले विष्णु को भी महत्व मिल गया। जो वास्तव में सूर्य का नाम था। परन्तु इस काल तक भी देवकी पुत्र कृष्ण की देवताओं में गणना न थी। वह छान्दोग्य उपनिषद् में केवल अंगिरस ऋषि का शिष्य बताया गया है।

धीरे-धीरे इन पाखण्ड-पूर्ण विधानों के प्रति लोगों की श्रद्धा

बढ़ने लगी और प्रसिद्ध पौराणिक देवता ब्रह्मा, विष्णु; शिव के नाम प्रसिद्ध हो गये। ये तीनों देवता सृष्टि के उत्पादन, पालन और संहार, इन तीन कामों के प्रथम देवता थे। वास्तव में यह हिन्दुत्रैकत्व बौद्धत्रैकत्व की नकल थी।

वर्तमान मनुस्मृति में जो बौद्ध काल के प्रारम्भ में बनी है, इस त्रिवेद की कुछ भी चर्चा नहीं है। न उसमें कहीं हिन्दुओं की मूर्त्ति-पूजा का ही जिक्र है। हां, उस समय मूर्त्ति पूजा प्रारम्भ हो चली थी और उच्च कोटि के हिन्दू उससे घृणा करते थे। परन्तु यह अद्‌भुत रीति बढ़ती ही गई और हिन्दू धर्म की प्रधान वस्तु हो गई। अब अग्निहोत्र एक अतीत वस्तु बन गया था। ईसा की छटी शताब्दी में कालीदास के समय में यह प्रथा खूब प्रचलित हो गई थी। फाहियान चीनी यात्री जो भारत में सन् ४०० ईस्वी में आया था। उसने क़ाबुल में बौद्धों का पूर्ण विस्तार देखा था और वह कहता है—यहां ५०० बौद्ध विहार हैं। उसने तक्षशिला का विश्व-विख्यात विश्वविद्यालय देखा था और पेशावर में बहुत बड़ा बौद्ध स्तम्भ देखा था। मथुरा में उसने तीन हजार बौद्ध भिक्षुओं का संघ देखा था और वहां उसने बौद्ध-धर्म का भारी प्रचार देखा था। राजपूताने के सब राजाओं को उसने बौद्ध-धर्मी पाया था उसने सर्वत्र ऐसे विहार देखे थे जिनके लिये राजाओं और श्रीमन्तों ने लाखों रुपये लगाये थे। सर्वत्र घूमता हुआ वह पटना गया और उसने

वहां बौद्धों के संघ में प्रथम बार मूर्त्ति को देखा। वह लिखता है—

"प्रति-वर्ष दूसरे मास के आठवें दिन मूर्त्तियों की एक यात्रा निकलती है, इस अवसर पर लोग एक चार पहिये का रथ बनवाते हैं और उस पर बांसों का टट्टा बांधकर पांच खंड का बनाते हैं उसके बीच में एक खम्भा रखते हैं जो तीन फल वाले भाले की भांति होता है। और ऊँचाई में २२ फीट या इस से अधिक होता है। और एक मन्दिर की भांति दीख पड़ता है। तब वे सफेद मलमल से उसे ढकते हैं। और चटकीले रङ्गों से रङ्गते हैं फिर देवों की चांदी-सोने की मूर्त्तियां बनाकर चाँदी, सोने और कांच से आभूषित करके कामदार रेशमी चन्दुए के नीचे बैठाते हैं। रथ के चारों कोनों पर वे ताख बनाते और उनमें बुद्ध की बैठी मूर्त्तियां जिनकी सेवा में एक बोधिसत्व खड़ा रहता है—बनाते हैं। ऐसे-ऐसे बीस रथ बनाये जाते हैं। इस यात्रा के दिन बहुत से गृहस्थ और सन्यासी एकत्रित होते हैं। जब वे फूल और धूप चढ़ाते हैं। तो बाजा बजता है और खेल होता है। श्रमण लोग पूजा को आते हैं तब बौद्ध एक-एक करके नगर में प्रवेश करते हैं। और वहां वे ठहरते हैं। तब रात-भर रोशनी करते हैं। गाना और खेल होता है। पूजा होती है......।"

वहां से यह यात्रा राजगृही, गया, काशी, कौशाम्बी और चम्पा तक पहुँचती थी जो पूर्वी बिहार की राजधानी थी। परन्तु

उसने कहीं भी एक भी मन्दिर हिन्दुओं का इन तीर्थों में नहीं देखा, सर्वत्र बौद्धों के संघाराम देखे। फिर वह ताम्रपर्णी गया, वहां भी उसने संघाराम देखे। अन्त में वह सिंहल को जहाज़ में बैठ गया।

इस यात्री के दो सौ वर्ष बाद ह्वेनसांग, चीनी यात्री भारत में आया, वह फर्गन, समरक़न्द, बुखारा और बलख होता हुआ भारतवर्ष में आया। वह सन् ६४० ईस्वी में भारतवर्ष में था।

उसने जलालाबाद को सम्पन्न नगर पाया जो बौद्धों से परिपूर्ण था, उसने वहां ५ शिवाले हिन्दुओं के देखे। और सौ पुजारी भी देखे। कन्धार और पेशावर में उसने १ हजार बौद्ध सङ्घारामों को ऊजड़ और खण्डहर पाया तथा हिन्दुओं के सौ मन्दिर भी देखे।

वह मालवा के राजा शिलादित्य का वर्णन करता है जो प्रसिद्ध विक्रमादित्य का पुत्र था। विक्रम ने एक बुद्ध भिक्षु को जिसका नाम मनोत्हृत था हिन्दुओं का पक्षपाती होने के कारण अपमानित किया था—परन्तु शिलादित्य ने उसे बुलाकर प्रतिष्ठा की थी। इससे आगे इस यात्री ने पौलुश नगर के निकट एक ऊँचे पर्वत पर नीले पत्थर से काट कर गढ़ी हुई एक दुर्गा-देवी की मूर्त्ति देखी थी। यहां उसने धनी और दरिद्र सबको एकत्रित होकर मूर्त्ति की पूजा करते देखा था। पर्वत के नीचे महेश्वर का एक मन्दिर था और वहां वे साधु रहते थे जो राख लपेटे रहते थे।

काबुल और चमन में जहाँ दो शताब्दी प्रथम फ़ाहियान ने बौद्ध धर्म का प्रबल प्रताप देखा था—इस यात्री ने सब सङ्घारामों को उजाड़ तथा देवताओं के दस मन्दिर देखे थे, वह तक्षशिला और काश्मीर भी गया—वहां उसे जैन मिले जो महावीर की मूर्ति पूजते थे। काश्मीर में बौद्ध अभी भी काफ़ी थे। वहाँ उस समय कनिष्क राज्य करता था जो बौद्ध था। और जिसने बौद्धों के उन्नत करने को सभा बुलाकर महायन समुदाय प्रचलित किया था। उसने पंजाब के राजा मिहिरगुल का भी जिक्र किया है जो बौद्धों का प्रसिद्ध बैरी था। जिसने पाँचों खण्डों के बौद्ध भिक्षुओं को मार डालने की आज्ञा दी थी और जिसने क़न्धार को विजय कर वहाँ के राजवंश को नष्ट कर डाला तथा बौद्धधर्म के सङ्घारामों स्तूपों और भिक्षुकों को छिन्न-भिन्न कर दिया था। सिंध के तट पर इसने ३ लाख बौद्धों को क़त्ल करा दिया था।

मथुरा में इसने अभी तक बौद्धों का प्रताप देखा था। वहां अभी २० सङ्घाराम थे और २००० भिक्षु यहाँ की पूजा उत्सव करते थे।

द्वाब में आकर उसने गङ्गा की प्रशंसा सुनी, जो पापों का नाश करने वाली प्रसिद्ध थी। वह उसकी भारी धार को देख कर भी बहुत प्रभावित हुआ। हरिद्वार में उसने एक बड़ा देवमन्दिर देखा, जिसमें बड़े चमत्कार किये जाते थे। हरकी

पैड़ी तब पत्थर की बन चुकी थी, और उसमें नहाने का महात्म्य भी प्रसिद्ध हो गया था।

कन्नौज को उसने गुप्त राजाओं की सम्पन्न नगरी पाया था। यहाँ उसने बौद्धों और हिन्दुओं को बराबर पाया। यहाँ १०० सङ्घाराम और १० हजार भिक्षु तथा २०० देव-मन्दिर और उसके कई हजार पुजारी उसने देखे थे। यहाँ के प्रतापी बौद्ध राजा शिलादित्य द्वितीय से वह मिला था। जिसने गंगा के पूर्वी किनारे पर १०० फ़ीट ऊँचे स्तम्भ पर एक पूरे क़द की सोने की बुद्धमूर्त्ति स्थापित की थी। वह लिखता है—

"वसन्त ऋतु के तीन माह तक वह भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भोजन देता था, सङ्घाराम से महल तक का सब स्थान तम्बुओं और गवैयों के खीमों से भर जाता था। बुद्ध की एक छोटी-सी मूर्त्ति एक अत्यन्त सजे हुए हाथी पर रखी जाती थी और शिलादित्य इन्द्र की भाँति सजा हुआ उस मूर्ति की बाईं ओर और कामरूप का राजा दाहिनी ओर ५-५ सौ युद्ध के हाथियों की रक्षा में चलता था। सजा चारों ओर मोती, सोने, चाँदी के फूल एवं अनेक बहुमूल्य चीजें फेंकता जाता था। मूर्ति को स्नान कराया जाता और शिलादित्य उसे स्वयं कन्धे पर रख पच्छिम के बुर्ज पर ले जाता था। और उसे रेशमी वस्त्र तथा रत्न-जटित भूषण पहनाता था। फिर भोजन और शास्त्र-चर्चा होती थी।

इन सब उदाहरणों से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि

हिन्दुओं ने मूर्त्तिपूजा ही नहीं उत्सव और त्यौहारों का मनाना भी बौद्धों से सीख लिया था। इस यात्री ने अयोध्या में भी बौद्धों के १० संघाराम और ३००० जन अर्हत देखे थे। हिन्दू भी बहुत थे। इलाहाबाद में उसने कट्टर हिन्दू देखे थे। और सङ्गम पर सैकड़ों मनुष्यों को स्वर्ग पाने की इच्छा से मरते देखा था।

वह कहता है कि—नदी के बीच में एक ऊँचा स्तम्भ था। लोग इस पर चढ़ कर डूबते हुए सूर्य को देखने जाते थे। श्रावंती कौशाम्बी और काशी में भी उसने हिन्दुओं का ज़ोर देखा था काशी में उसने ३० संघाराम और ३००० भिक्षुओं को देखा था। साथ ही १०० मन्दिर और दस हज़ार मनुष्य पुजारी देखे थे। यहां भी सिर्फ महेश्वर की पूजा होती थी। महेश्वर को ताम्बे की मूर्त्ति सौ फ़ीट ऊँची थी और वह इतनी गम्भीर और तेजपूर्ण थी कि जीवित जान पड़ती थी।

काशी में, एक विहार में एक क़द्दे-आदम बुद्धमूर्त्ति भी इस यात्री ने देखी थी। वैशाली में उसने संघारामों के खण्डहर देखे थे और बहुत कम भिक्षुक वहां रहते थे—देव मन्दिर बहुत बन गये थे। मगध में उसने पचास संघाराम देखे जिनमें दस हजार भिक्षु रहते थे। यहां दस हिदुओं के मन्दिर थे। पाटलीपुत्र इस के समय में उजड़ गया था। गया में उसने ब्राह्मणों के हजार घर देखे थे। गया के बोधिवृक्ष और विहार की चढ़ी-बढ़ी शोभा इस यात्री ने देखी थी। वह लिखता है—

"यह १६० या १७० फीट ऊँचा है। और वहुत सुन्दर बेल-बूटों का काम इस पर हुआ है। कहीं तो मोतियों से गुथी हुई मूर्त्तियां बनी हैं—कहीं ऋषियों या देवताओं की मूर्त्तियाँ हैं। इन सबके चारों ओर तांम्बे का सुनहला आमलक फल हैं इसके निकट ही महाबोधि संघाराम की बड़ी इमारत है। जिसे लंका के राजा ने बनवाया हैं। उसकी ६ दीवारें तथा तीन खण्ड ऊंचे बुर्ज हैं। इसके चारों ओर ३०-४० फ़िट ऊंची फसील है। ...इसमें शिल्प की बहुत भारी कला खर्च की गई है। बुद्ध की सोने चांदी की मूर्तियां हैं और उनमें रत्न जड़े हैं। वर्षा ऋतु में वहां बौद्धों का भारी मेला लगता है। लाखो मनुष्य आते और दिन-रात उत्सव मनाते हैं।"

इसने नालंदा विश्वविद्यालय में कामरूप के राजा के साथ कुछ दिन व्यतीत किये थे और बड़े बड़े विद्वानों से इसने बातचीत की थीं। मुंगेर और पूर्वी बिहार में तथा उत्तरी बंगाल में बौद्धों और हिन्दुओं के संघाराम और मन्दिर दोनों ही देखे। फिर वह आसाम मनीपुर, सिलहट आदि में आया जहां हिन्दुओं के बहुत से मन्दिर बन गये थे। और बौद्धों का बहुत कुछ ह्रास होगया था।

यहां उसने एक भी संघाराम नहीं देखा। ताम्रलिप्त राज्य जो आजकल मिदनापुर के आस-पास है बौद्धों के संघाराम जहां तहाँ देखे। कर्ण सुवर्ण (मुरशिदाबाद) में उसने बौद्धों और हिन्दुओं दोनों को देखा था। उड़ीसा में उसने बौद्धों के १००

संघाराम तथा १० हज़ार भिक्षुक देखे थे । पुरी का मन्दिर नहीं बना था, पर वहां १० मन्दिर हिन्दुओं के बन गये थे और यह स्थान बौद्धों की रक्षा का एक मात्र स्थान था। बौद्धों की रीति पर आज भी पुरी में जगन्नाथजी की रथ-यात्रा होती है। कालिंग राज्य में बौद्ध धर्म न था । बरार में बौद्ध हिन्दू दोनों समान थे। यहीं प्रसिद्ध सिद्ध नागार्जुन रहता था। आन्ध्र प्रदेश में उसने २० संघाराम और ३० देव-मन्दिर देखे थे। अधिकांश मठ उजड़ गये थे। मन्दिर और उनके पुजारी बढ़ गये थे, द्राविड़ देश में उसने बौद्धों का भारी ज़ोर देखा था, यहाँ १०० संघाराम और १० हज़ार भिक्षु थे। मालावार में भी उसने बौद्धों और हिन्दुओं को समान देखा था। लंका वह नहीं गया, पर वह लिखता है—वहाँ १०० और २० हज़ार भिक्षु हैं महाराष्ट्र प्रदेश में उसने अनेक बड़े बड़े संघाराम देखे, एजेण्टा की प्रसिद्ध गुफायें भी उसने देखी थीं, यहाँ ७० फुट ऊंची बुद्ध की एक पत्थर की मूर्ति थी। जिस पर एक ही पत्थर का ६ मंजिला चँदवा था, जो अधर खड़ा था । मालवे में उसने १०० संघाराम और १०० देव-मन्दिर देखे थे। कच्छ, गुजरात और सिंध में भी उसने सर्वत्र घटते हुए बौद्ध धर्म और बढ़ते हुए मूर्ति पूजक हिन्दू धर्म को देखा था।

इन मन्दिरों में इनके पुजारियों ने कुछ ही शताब्दियों में अटूट सम्पदा इकट्ठा कर ली थी और समस्त हिन्दू जाति का धन इन मन्दिरों में एकत्र हो गया। भारत के सभी नगर इन

मूर्ख पुजारियों से भर गये। सन् ६१२ ई० में जब मुहम्मद बिन क़ासिम ने दाहर को परास्त किया तब सिंध (हैदराबाद) के एक मन्दिर से उसे ४० डेगें ताम्बे की भरी हुई मिली थीं, जिन में १७१०० मन सोना भरा था। इसके अतिरिक्त ६००० ठोस सोने की मूर्तियाँ थीं जिनमें सब से बड़ी का वज़न ३० मन था हीरा, पन्ना, मोती, मानिक इतना था जो कई ऊँटों पर लाद कर ले गया था।

महमूद ग़ज़नबी ने ११ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में नगरकोट के मन्दिर को लूटा और उसमें से ७०० मन अशर्फी और ७०० मन सोने चाँदी के बर्तन, ७४० मन सोना, २००० मन चांदी और २० मन हीरा-मोती लूट में मिले थे। इसी साहसी योद्धा ने आगे बढ़ कर गुजरात का सोमनाथ का वह प्रसिद्ध मन्दिर लूटा था, जिसमें अनगिनत रत्नजटित ५६ खम्भे लगे थे और मूर्ति के ऊपर ४० मन का वज़नी ठोस सोने की ज़ंजीर से घण्टा लटक रहा था। इस लूट की सम्पदा की गणना न थी।

आज भी यदि आँख के अन्धे हिन्दू आँख खोलकर देखें तो उन्हें अपनी कमाई का सब से बड़ा भाग मन्दिरों में संचित मिलेगा। नाथद्वारा के मन्दिर की ही मैं अपने अनुभव की बात कहता हूँ। इस मन्दिर के लिए उदयपुर राज्य से २८ गाँव जागीर में मिले हुए हैं। और उसका दैनिक ख़र्च १७००) रुपये का है। आमदनी चढ़ावे की बेशुमार है। ठाकुर जी पर चढ़ावा अलग चढ़ता है, गुसाईंजी पर अलग, उनकी स्त्री और बच्चों पर

अलग। इस प्रकार करोड़ों रुपये के जवाहरात इस मन्दिर में सुरक्षित हैं। १७०० रुपये रोजाना का जो खर्चा होता है, इसमें से किसी भी दीन दुखिया को एक पाई नहीं मिलती, न किसी का इससे उपकार होता है। वह रुपया सब भोग में खर्च होता है और वह भोग तनख़ाह के तौर पर काम करने वालों में बाँट दिया जाता है जो उसे घर घर बेचते फिरते हैं।

अन्य मन्दिरों की भी यही दशा है और उनके पुजारियों को वह सब आमदनी स्वेच्छा से खर्च करने का पूरा अधिकार है। सब लोग जानते हैं कि पुजारी प्रायः मूर्ख, भंगेरी, लम्पट, व्यभिचारी और नीच प्रकृति के होते हैं। पत्थर पूजने का जड़ काम कोई बुद्धिमान् नहीं कर सकता। ईश्वर ही जान सकता है कि कैसे इस महामूर्खता के विचार हिन्दुओं के दिमागों से दूर होंगे।

पण्डे-पुजारियों के बाद पाखण्डियों में दूसरा नम्बर साधु-महात्माओं का है। भारतवर्ष में इस समय २५ लाख मुस्टण्डे साधु हैं। जिनका पेशा गृहस्थों की गाढ़ी कमाई को हरण करना, खाना-पीना, मौज उड़ाना और गृहस्थ की स्त्रियों में व्यभिचार फैलाना है। ये लोग धेले का गेरू और एक पैसा सिर मुड़ाई का देकर एकदम महात्मा बन जाते हैं। इनके अनेक पंथ और अखाड़े हैं। दादूपन्थी, रामसनेही, कबीर पन्थी, निरञ्जनी, उदासी, नागर नाथ आदि न जाने क्या-क्या। इनके बड़े-बड़े मत और गुरद्वारे हैं। और उसमें लाखों की सम्पत्ति है। ये

लोग जाट, माली, गूजर, बिसनोई, कुरमी आदि किसान पेशा लोगों से चेला मूंडते हैं। यहाँ आलसी, निकम्मे लड़के मेहनत से बचने के लिए आसानी से मिल जाते हैं। साहूकार के कर्जे से भी बच जाते हैं। ये लोग दिन-भर राम-नाम भजने या माला फेरने का ढोंग किया करते हैं। और खूब माल-मलीदे उड़ाते रहते हैं। एक अँग्रेज यात्री ने इन्हें 'इटेलियन-स्टेलियन कहा है। यह वास्तव में नर में सांड हैं। वे अपने को अहं ब्रह्मस्मि' कहते हुए अपने ही समान सब को ब्रह्म ही समझने लगते हैं। वे प्रायः अपने शिष्यों को सदा यही उपदेश देते हैं 'ब्रह्मनी ब्रह्म लग्नम्'। और वे आंख के अन्धे गाँठ के पूरे 'हरेनमः बापजी' कह देते हैं। मौका पाकर ये ब्रह्मनी से ब्रह्म का सचमुच लग्नम् कर देते हैं। एक बार गुरुदेव की एक ब्रह्मनी (चेली) पर उनके एक ब्रह्म ने ऐसा ही कुछ अनुभव कर डाला—इस पर गुरु ने फटकार कर कहा—अरे पापी, यह क्या किया ? उसने कहा—महाराज मैंने तो ब्रह्म से ब्रह्म मिलाया, यह तो पाप नहीं गुरुजी ताव-पेच खाकर चुप रहे। अवसर पा उन्होंने भी चेले की स्त्री को एक दिन गुरुमन्त्र का अभ्यास करा दिया। परन्तु शिष्य भी पहुँच गये और लगे गुरु की जूती से पुजा करने। गुरुजी जब हाय तोबा-करने लगे तो शिष्य ने कहा—"महाराज' चर्मनी चर्म लग्नम्। ब्रह्मनी लग्नम् किम् ?' अर्थात् चमड़े से चमड़ा लगा ब्रह्म को क्या लगा—वह क्यों रोता चिल्लाता है।

गांजा, सुलफा भंग, चरस आदि का पीना इसका धर्म है।

और गालियाँ बकना इनका स्वभाव। इनके द्वारा जो-जो अनर्थ और अपराध समाज में किये जाते हैं उनका वर्णन हम स्थान-स्थान पर पुस्तक में कर चुके हैं।

अब तीसरे दर्जे के पाखण्डियों की सुनिये। ये जोशी बाबा भड्डुरी और पत्रा देखकर शकुन मुहूर्त बताने वाले हैं। ये लोग प्रत्येक गाँव शहर और कस्बों में मक्खी की औलाद की भाँति भिनभिनाते घूमते रहते हैं और अवसर पाते ही स्त्रियों और बेवकूफों को ठगा करते हैं।

मुहूर्त के लोग इतने कायम हैं कि बिना मुहूत पूछे वे कोई काम ही नहीं किया चाहते। ज्योंही आपने किसी ज्योतिषी को बुलाया कि वे पत्रा खोलकर गणित करने का पाखण्ड करेंगे, उगलियों पर कुछ गिनती करेंगे, और फिर सिर हिलाकर धीरे-धीरे गम्भीरता से ऐसी बातें बतायेंगे कि आप बहुत ही चक्कर और चिन्ता में पड़ जायँ। इसके बाद उपाय करने के बहाने आपसे वे खूब ठग-विद्या करेंगे।

एक बार ऐसा हुआ कि मैं एक क़स्बे में ठहरा हुआ था। पड़ोस में किसी के बच्चा हुआ था। एक ऐसा ही ठग वहाँ जा पहुँचा। अवश्य ही उसने सुराग़ लगा लिया था। वहाँ पहुँच कर उसने गणित द्वारा बता दिया कि इस घर में कोई जीव जन्मा है। उस पर चौथा चन्द्रमा है। अभी किसी भड्डुरी को अमुक-अमुक वस्तु दान कर दो—वरना खैर नहीं। लोगों ने भयभीत हो कर कहा—महाराज, आप ही यह दान ले लें—

अब हम भड्डुरी को यहाँ कह पावेंगे। उसने कहा—नहीं बाबा, यह दान जो लेगा उस पर आफत आवेगी, मैं नहीं ले सकता, तुम किसी और को ढूँढ़ो। यह कह चला गया। गली के दूसरे छोर पर एक भड्डुरी खड़ा देख कर घर वाले उसे बुला लाये और वे पदार्थ उसे दे दिए। पीछे देखा दोनों की मिल भगत थी।

मुहूर्त बताने के इनके ढङ्ग ढङ्ग सुनिये गिन-गिनाकर और लकीर खींचकर कहेंगे महाराज, आसाढ़ शुक्ला ३ रविवार ३ घड़ी ८ पल चढे दिन का मुहूर्त बनता है।

आप सन्देह से कहेंगे—बनता तो है क्या माने, ठीक-ठीक बताइये। अब वे पितलाया-सा मुँह बना कर कहेंगे—

'और सब ठीक है' सिर्फ चन्द्रमा अपने घर का नहीं। परन्तु दिन रविवार है, इसमें हानि नहीं। आप यही मुहूर्त रखिए, इस प्रकार पीछे के लिये अपना कुछ बचाव वे निकाल ही लेते हैं। बहुधा लोग कहा करते हैं—

दिशाशूल ले जावे बाया, राहु योगिनी पूठ।
सन्मुख लेवे चन्द्रमा, लावे लक्ष्मी लूट॥

विवाह-शादियों का तो एक खास साहलग होता है, उन दिनों के अलावा आप विवाह आदि शुभ कर्म कर ही नहीं सकते। बहुधा यह उस्ताद लोग बिना मुहूर्त भी मुहूर्त का कुछ उपाय निकाल ही लेते हैं। एक पूजा बृहस्पति की कराई। एक दुघड़िया मुहूर्त भी होता है, जो बहुत आवश्यकता से जल्दी के

कामों में निकाला जाता है। बहुधा मुहूर्त के समय कहीं जाना न हो सके तो यारों ने उसका भी संशोधन निकाल रखा है अर्थात् प्रस्थान करके रख दिया जाता है—वह इस प्रकार, कि जाने वाला अपने दुपट्टे में पाँच मंगल पदार्थ—यथा सुपारी, मूंग, हल्दी धनिया, गुड़ और एक चाँदी का सिक्का बांधकर जिधर जाना हो उस तरफ़ घर से दूर रख आता है। बस, फिर ३ दिन तक उस दुपट्टे के साथ जाने में कोई खतरा नहीं रहता।

शकुनों का भी इन अवसरों पर अद्भुत प्रयोग होता है। एक बार कोटा के महाराज ज़ालिमसिंह उल्लू बोल जाने पर महल का निवास छोड़ कर खेतों में रहने चले गए थे। इसी प्रकार जयपुर नरेश ने मथुरा का प्रसिद्ध मन्दिर किसी अपशकुन के कारण ही अधूरा छोड़ दिया था। विद्यार्थी परीक्षा में जाने से प्रथम शकुन देखते हैं। वैद्य रोगी देखने के समय शकुन देखते हैं, चोर चोरी करने के समय शकुन देखते हैं। यह शकुन पशु-पक्षियों की बोली, उनका दायाँ-बायाँ होना व्यक्ति के सामने से होता है।

स्वप्न भी शकुनों से सम्बन्ध रखते हैं। रात को उल्लू का मकान पर आकर बोलना भारी अपशकुन समझा जाता है। एक बार एक वैद्यराज रोगी को देखने गये रास्ते में दाहिने तीतर बोला, आगे चले—ऊँट का पाँव उखड़ गया। ऊँट वाले ने कहा—महाराज, ये शकुन तो अच्छे नहीं। परन्तु वैद्यजी रोगी को अच्छा कर ५०० रुपये लेकर घर लौटे। घर से चलती बार

साग-सब्जी सामने आना शुभ शकुन है, पानी के घड़े मिलना शुभ शकुन हैं। खाली मिलना अशुभ है। रोटियाँ शुभ और आटा अशुभ है। दही शुभ है और दूध घी अशुभ हैं। सुहागन शुभ और विधवा अशुभ है। भंगी शुभ है। सुनार का मिलना अशुभ है। एक बार हम सीकर गये थे। एक आदमी दौड़ता आया, सुनारों को सामने से हटाता चला, क्योंकि राजा साहब की सवारी आ रही थी।

काने पुरुष का मिलना अशुभ है। गधा बाई ओर और साँप दाई ओर मिलना शुभ है। चलते बार टोकना अशुभ है। देवा-देवताओं से भी शकुन देखे जाते हैं। मूर्ति के ऊपर चढ़ाई माला या फूल खिसक पड़ना अशुभ है। प्रायः देवी-देवताओं के सामने आग पर नारियल को गिरा या घी डाला जाता है, यदि आग भवक उठे तो जोत जगना कहते हैं और कार्य सिद्ध का लक्षण समझते हैं। और भी बहुत से टोटके किये जाते हैं—जिनकी गिनती नहीं हो सकती।

सर्प और छिपकली भी शकुन देखने की चीजें हैं। दो सांपों का लड़ना घर में लड़ाई होने का लक्षण है। दो साँपों का एक ही ओर जाना दरिद्र आने के समान है। सर्प को हरे वृक्ष पर चढ़ते देखना इतना अच्छा है कि देखने वाला सम्राट होगा। राजा यदि साँप को पेड़ से उतरता देख ले तो अशुभ है। सोते हुए साँप का सिर पर फन फैलाना शुभ है। साँप को घर में प्रवेश करते देखना धन प्राप्ति का लक्षण है। भूमि पर मरा साँप

देखना घर में होने वाली मृत्यु की सूचना है। छिपकली का अध्याय भी बड़ा टेढ़ा है। शरीर पर ६४ स्थान हैं उन पर छिपकली के गिरने से भिन्न-भिन्न शुभाशुभ फल होते हैं। प्रातः काल सोकर उठने पर शुभ शकुन देखने की हिन्दुओं को बड़ी फिक्र रहती है। प्रायः वे हथेली को रगड़ कर देखा करते हैं। क्योंकि पाखण्ड शास्त्र में लिखा है—

कराग्रे वसति लक्ष्मी, कर मध्ये सरस्वती।
कर पृष्ठे च गोविन्दः प्रभाते कर दर्शनम्॥

प्रायः कोई बुरी घटना होने पर लोग कहते हैं आज सुबह किस का मुँख देखा था।

छींक भी शकुन की खास निशानी है। शुभ अवसरों पर छींक होना निहायत वाहियात समझा जाता है। पर दो छींकें होना शुभ है। खाते, पीते, सोते समय छींकना शुभ है।

नज़र लग जाना भी भारत भर में फैला है। लोग कहा करते हैं कि नजर ऐसी कड़ी चीज है कि पत्थर को भी तोड़ सकती है। प्रायः बच्चों को नज़र का बड़ा ही भय रहता है। नज़र उतारने के अद्भुत-अद्भुत उपाय काम में लाये जाते हैं। माता-पिता, कुटुम्बी, सम्बन्धी चाहे भी जिसकी नज़र बच्चे को लग सकती है। नज़र से बचने के बड़े-बड़े टोटके किये जाते हैं। काजल का टीका लगाया जाता है। नोन-राई उतार कर आग में डाली जाती है। राख चटा दी जाती है। मकानों को भी नज़र से बचाने के लिये खास तौर पर चिह्नित कर दिया जाता है। नज़र

के डर से बहुत सम्पन्न गृहस्थ भी बच्चों को साफ़ नहीं रखते न अच्छे वस्त्र पहनाते हैं।

बहुधा जिनके बच्चे कम जीते हैं वह उन्हें माँग कर ही वस्त्र पहनाते हैं। और न जाने क्या क्या कार्य करते हैं जिनसे मनुष्य की बुद्धि का कोई भी सरोकार नहीं है। बहुधा बच्चा होने पर उसकी नाक में छेद करके लोहे की कील डाल देते हैं। और उसका नाम नत्था या नत्थूमल रख देते हैं। यह कड़ी उसके विवाह में उसकी सास ही खोल सकती है, ऐसा मारवाड़ में रिवाज है। प्रायः जिनकी सन्तान-मर जाती है वह माता किसी अन्य बालक के बाल या कपड़ा कतर लेती है, और इस बात का जब उस बालक के अभिभावकों को पता लगता है तो बड़ा भारी घर युद्ध होता है।

बच्चे के रूप की तारीफ करने से उसकी माता बुरा मान जाती है। वह उसे भद्दे रूप में रखना और भद्दे नामों से पुकारना पसन्द करती है। प्रायः वह बच्चे को रोगी और दुर्बल बताया करती है। चाहे वह कितना ही मोटा ताज़ा क्यों न हो। बच्चे के रोगी होने पर नज़र ही का सन्देह किया जाता है। फिर तो लाल मिर्चों की धूनी दी जाती है या देवी देवताओं का चरणामृत दिया जाता है।

इस पाखण्ड के आप ज़रा दो-एक नमूने सुनिये—एक चलते-पुर्जे ज्योतिषी जी ने देखा कि अमुक लाला जी रोज़ वेश्याओं में घूमा करते हैं। उन्होंने अपनी सिद्धाई की शोहरत उनकी स्त्री

तक पहुँचाई और वहाँ पहुँच भी गये। स्त्री ने उनसे अपना दुःख रोया और पति को वश में करने का उपाय पूछा—ज्योतिषी जी ने अनुष्ठान का एक ही दिन में चमत्कार दिखाने का वचन दिया और २०) लेकर चम्पत हुए। अब वे लाला जी के पास गये। उन्होंने पूछा—कहो महाराज, आज-कल दिन कैसे हैं? ज्योतिषी जी ने पत्रा खोला, उङ्गली पर गिनती गिनकर कहा—तुम्हें तो आज मारकेश का योग है। कहीं न कहीं जान का ख़तरा है। लाला जी घबरा गये। उपाय पूछा। ज्योतिषी जी ने अनुष्ठान की सलाह दी और २०) वसूल कर चलते बने। चलती बार कह गये—शाम के ६ बजे से सुबह तक घर ही में रहना। किसी से इस ग्रह का हाल न कहना, न ख़याल में लाना। उन्होंने यही किया। अनुष्ठान का हाथों हाथ फल पाकर स्त्री प्रसन्न हो गई। दोपहर को पण्डित जी फिर पहुँचे और स्त्री से २००) ठग लाये कि पक्का प्रयत्न हमेशा के लिये कर दूँगा। पक्का इन्तज़ाम ऐसा हुआ कि बेचारी को कुछ दिन बाद और भी बुरा दिन देखना पड़ा।

एक ज्योतिषी जी को एक सेठानी ने बुलाकर कहा कि मेरा पति वेश्या के यहाँ जाता है कुछ उपाय कीजिये। उसने अनुष्ठान करने का वादा किया। उसने सेठ से कहा—आपके ग्रह ठीक नहीं, यदि आप उस स्त्री के पास अमुक तिथि तक जायँगे तो बड़ा घाटा रहेगा। उन दिनों घाटा हो भी रहा था। लाला घर में सोने लगे। स्त्री ने प्रसन्न हो १००) नज़र कर दिये।

वेश्या को पता लगा तो उसने उन्हें बुला कर बहुत लल्लो-चप्पो की और २००) नज़र किये तब ज्योतिषी जी ने सेठ से कहा—अब रास बदल गई है—उसके पास जाने से ही लक्ष्मी आवेगी। आँख और गाँठ के अन्धे सेठ जी फिर वहाँ जाने लगे।

एक बार एक ज्योतिषी जी ने एक ज़िमीदार को, जिसका मुक़द्दमा चल रहा था जाकर कहा—आपके ग्रह बहुत अच्छे पड़े हैं, यज्ञ करो मुक़द्दमा जीतोगे ! यज्ञ में भैंसे की बलि दी जायगी। यज्ञ किया गया और जीता भैंसा आग में डाल दिया गया। कुछ दिन बाद मुक़द्दमा वे जीत भी गये और ज्योतिषी जी को १००) रुपये नक़द और एक दुशाला भेंट में मिला। कहाँ तक हम इस प्रकार के उदाहरण दें। पाठक इसी से बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं। इसलिये अधिक विस्तार न कर इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं।

———

(१०)

धर्मनीति

जिस काम में विचार शक्ति को काम में न लाया जाय वह काम बेवकूफ़ी में दाख़िल है। आजकल प्रायः संसार भर के धर्म बेवकूफ़ ही कहलाये जा सकते हैं। क्योंकि प्रायः सर्वत्र ही यह कहा जाता है कि धर्म के काम में अक्ल को दख़ल नहीं है। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि धर्म के काम में अक्ल को दख़ल क्यों नहीं है। धर्म क्यों इतना बेसिर पैर की चीज़ है, क्यों युक्ति और नीति रहित है कि उसमें सोचने-विचारने से पाप लगता है।

मैं यह कहता हूँ कि मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्ति का यदि कहीं पर उपयोग हो सकता है—तो वह धर्म ही है। धर्म ही को गीता ने कर्म कह कर पुकारा है। कौन काम कर्म है, कौन नहीं—गीता कहती है कि यह निर्णय करने में बड़े-बड़े धुरन्धर शास्त्री विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं।

हमने पीछे किसी अध्याय में कणाद मुनि के वैशेषिक सूत्र "यतो अभ्युदय निःश्रेय सिद्धीः स धर्मः" इस पर प्रकाश डाला है। इस वाक्य के साथ वहाँ जो और पङ्क्तियाँ लिखी हैं उन पर प्रत्येक पाठक को भली भाँति मनन करना चाहिये।

उससे अधिक मैं यह कहना चाहता हूँ कि सब से उत्तम धर्म वही है, जिसमें नीति की मर्यादा का अधिकाधिक पालन किया गया हो। यद्यपि आज संसार भर के मनुष्य नीति से धर्म को पृथक् किया चाहते हैं। परन्तु मेरी राय में यह असम्भव है।

नीति का निर्माण रीतियों पर चला है। सृष्टि के आदि से आज तक लोग अच्छी रीतियाँ चलाते और बुरी छोड़ते रहे हैं। बहुधा ऐसा होता हैकि लोकलाज या दबाव से बहुत मनुष्य कुछ बुरे काम नहीं करते और कुछ अच्छे कर गुज़रते हैं। यद्यपि बुरे कामों के लिए उनके मन में इच्छा और भले कामों के लिये अनिच्छा रहती है। परन्तु कुछ ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो मरने जीने या हानि-लाभ की तनिक भी परवाह बिना किए, नीति-मार्ग पर चले ही जाते हैं। इन दोनों प्रकार के मनुष्यों में अन्तर तो होता ही है। और वह अन्तर यही है कि अन्तरात्मा से काम करने वाले लोगों की नीति ही धर्म नीति हैं। यदि नीति और धर्म का समावेश न किया जायगा तो नीति कभी भी अच्छे मार्ग पर न चल कर कुराह पर ही चलेगी। वास्तव में बीज धर्म है और नीति का जल सिंचन करने से ही उसमें शुभ अंकुर लगता है। केवल नीति के परिणाम-स्वरूप

ही हम अच्छे विचारों का निर्णय कर सकते हैं। मनुष्य का साधारण ज्ञान हमें बताता है कि दुनिया कैसी है—परन्तु नीति हमें यह बताती है कि वह कैसी होनी चाहिए। और धर्म हमें उस लक्ष्य तक पहुँचाता है।

मनुष्य को उचित है कि वह शरीर, मन और मस्तिष्क की अलग अलग जाँच करे। वह इस बात पर भी ग़ौर करे कि अन्याय स्वार्थ, दुष्टता और अभिमान के क्या परिणाम होते हैं। यदि मनुष्य धर्म और नीति को संयुक्त करके विचारों का एक नक़शा (प्लान) तैयार करलें और फिर उन पर वह अमल करे तो वह सही उतरेगा। नक़शा बताता है कि घर कैसा बनेगा, घर बन जाने पर नक़शा व्यर्थ है। इसी प्रकार नीति और धर्म के विपरीत आचरण करके नीति पर विचार करना व्यर्थ है।

नीति का नियम यह है कि हमारे अनुभव में जो सचाइयाँ आती जायँ उनके आधार पर हम अपने आचरणों को बनाते जायँ। जो मार्ग सच्चा है, उसे ग्रहण ही करना चाहिये। इसका यह अर्थ है कि हमें कट्टरता के सभी विचार त्याग देने चाहियें। और कट्टरता को जो आजकल के धर्मों का प्रधान लक्षण है, नीति मूलक धर्म का सबसे बड़ा दुश्मन समझना चाहिए।

उत्तम धर्म नीति क्या है—इस पर विचार करना भी आवश्यक है। अमुक कार्य से हमारा यह लाभ हो सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह धर्म-नीति से पूर्ण है और इसी

प्रकार धर्म-नीति के कार्य के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह लाभ-दायक हो। इसका अर्थ यह है जैसा कि बहुधा लोग किया करते हैं कि वे अपनी भलाई के काम करते हैं। धर्म-नीति का आधार न तो मनुष्य की इच्छा पर है, और न स्वार्थ ही पर। ऐसे नीति-निष्ठ और धर्मात्माओं का अभाव नहीं जिन्होंने सत्य शोधने के लिए कष्ट सहे और जानें दीं। इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि धर्म वे निर्णय हैं जो मनुष्य के मत, स्वार्थ और इच्छा से भिन्न हैं। और उनके आधीन होना मनुष्य के लिए कर्तव्य है।

धर्म-नीनि के तीन मूल सिद्धांत हैं। १—सत्य, २ भलाई ३—ईश्वरीय नियम। ये तीनों चीज़ें जगत में सदैव रहेंगी, चाहे सारी पृथ्वी के मनुष्य शैतान या अधर्मी क्यों न हो जायँ।

अनीति ही अधर्म है। पहले वह अनीति धर्म से पृथक् दीख पड़ती है, पीछे वह धर्म-स्वरूप को प्रकट कर देती है। अन्याय और अन्धविश्वास आंधी की भाँति उठते और अन्त में नष्ट हो जाते हैं। सीरिया और बेबिलिन में अधर्म का घड़ा भरते ही फूट गया। रोम अधर्म नीति पर चलने लगा और नष्ट हो गया। बड़े-बड़े रोमन महापुरुष भी उसकी रक्षा न कर सके। ग्रीस की चतुर प्रजा ग्रीस को अनीति से न बचा सकी। फ्रांस का विद्रोह अनीति के ही विरुद्ध था। एक विद्वान का कहना है—अनीति को राजसत्ता सौंप दो—वह टिक

नहीं सकेगी।

क्रांति एक स्थिर सत्य है जो धर्म या नीति के विपरीत फैले जाल को नष्ट करती है। क्रांति सामाजिक जीवन का नीरोगी कारण है।

हम सुक़रात, मसीह, कृष्ण, दयानन्द और ऐसे ही हज़ारों-लाखों मनुष्यों को इसी क्रांति की भेंट होते देखते हैं! जिन्होंने मिथ्या विश्वासों के विपरीत आवाज़ उठाई थी, जिनके कारण समाज निस्तेज और प्रभाशून्य हो गया था। तत्कालीन सत्ताधारियों ने इन महात्माओं को खूब कष्ट दिया। मसीह को अपराधी के कठहरे में खड़ा कर, एक पुरुष ने गम्भीरता पूर्वक उसे अपराधी कह कर सूली पर चढ़ा दिया। महा तत्वदर्शी सुक़रात को सामने खड़ा कर एक विद्वान विचारक ने उसे विष पीकर मर जाने की आज्ञा दे दी थी। महात्मा गांधी अपना पवित्र और बहुमूल्य जीवन जेल में व्यतीत करते थे। परन्तु ईसा की मूर्ति आधे संसार के राज मुकटों के लिए वन्दनीय है।

अन्ततः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सत्य, न्याय, और ईश्वरीय नियमों का पालन करने के लिए हमें निरन्तर क्रांति करनी चाहिए। और कभी अपने व्यक्तिगत लाभ हानि को इससे सम्बन्धित नहीं होने देना चाहिए।

यदि ऐसा किया जायगा तो मनुष्य जाति का सच्चा धर्म मनुष्य पर सौभाग्य और सुख की वर्षा करेगा और सारे संसार के मनुष्य परस्पर मिल कर सच्चा भ्रातृभाव प्राप्त करेंगे।

(११)

धर्मादा खाता

आज तक हमारी धर्मभीरुता के कारण हमें सैकड़ों वर्षों से चलते-पुर्जे पेशेवर गुनहगारों ने बेवकूफ़ बनाकर धर्मादे खाते में असंख्य धन हम से ठगा है। आज सारे भारतवर्ष में लाखों मन्दिर हैं जिनकी आय करोड़ों रुपये सालाना की है; इसके सिवा नये २ पेशेवर लीडर आयेदिन पचासों नये २ महकमे निकाल कर हम से भिन्न भिन्न प्रकार की युक्ति से चन्दे और दान माँगते ही रहते हैं और हम अपने पसीने की कमाई में से उन्हें कुछ न कुछ देना अपना कर्तव्य समझते हैं। बाज़ार में जब हम कोई सौदा खरीदते हैं तो दुकानदार धर्मादे का पैसा पहिले ही कटौती काट लेता है। हमारे पास इस बात के काफ़ी प्रमाण हैं कि इस प्रकार से एकत्रित धन लाखों की संख्या में सेठ लोगों के वहीखाते में जमा है।

वह ज़माना गया जब लोग हमारी दिमाग़ी गुलामी से अनुचित लाभ उठाकर हमें स्वर्ग के प्रलोभन देकर हमारा धन लूट सकते थे। आज हम इस बात पर विचारना चाहते हैं कि इस प्रकार देश का करोड़ों रुपया धर्म खाते में डाल रखना कहाँ

तक उचित और लाभदायक है। आज हम से यह छिपा नहीं कि यहां के पण्डे और पुजारी कैसे लम्पट, दुराचारी, अनपढ़ और कमीने होते हैं और वे हमारी कमाई में से पवित्र धन को शराब और व्याभिचार में बर्बाद कर देते हैं। क्या यह सम्भव है कि हम आँख मीच कर यह सब सहन करते चलें हम लम्पट, शराबी और वेश्यागामियों को क्या पवित्र पुरुष समझ सकते हैं ? क्या व्यभिचार की पवित्रता में हमें संदेह नहीं होना चाहिये ? आज भी दक्षिण के सैकड़ों मन्दिरों में हजारों देवदासियाँ विद्यमान हैं और पुजारियों की पशुवृत्ति एवं यात्रियों की कृपादृष्टि पर औक़ात बसर करती हैं। ऐसा कौन सा धर्म शास्त्र हो सकता है जो इन व्याभिचारणी वेश्याओं की वेश्यावृत्ति को धर्म सम्मत सिद्ध कर सकता है।

आज देश में ६० लाख के लगभग भिखमंगे हैं। इनमें अधिकांश मुस्टंडे और बुरे से बुरे व्यसनों में लिप्त है। नशेबाजी, पाखंड, झूठ, दुराचार इनका स्वभाव है, अनेक अपराध भी इनके नित्यकर्म हैं। क्या हम जानकर भी अनजान की भाँति कह सकते हैं कि हरामखोरों की सारी उछलकूद हमारी दी हुई रोटियों के बल पर ही नहीं होती है ? ये लोग चाहे जिसकी बहू-बेटी का अपहरण करते हैं, चाहे जिसे गालियाँ देते हैं—गुण्डा वृत्ति इनके लिए क्षम्य है, और इस मूर्खता एवं उदण्डतायुक्त जीवन को हम उनकी साधुवृत्ति कहते हैं। क्या हमारे लिये यह हद दर्जे की मूर्खता की बात

नहीं है ?

दान के हज़ारों लुभावने उदाहरण लिखकर इन लोगों ने दान देने के लिये हमारे मन में बहुत कुछ श्रद्धा के भाव उत्पन्न कर दिये हैं। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि दान देना वास्तव में एक अपराध का कार्य है। इस दान की बदौलत ही आज लाखों भिखारी देश में उत्पन्न हो गये हैं, जिन्हें दूसरों के सामने हाथ पसारते तनिक भी ग्लानि नहीं होती। दानियों में सत्यवादी हरिश्चन्द्र और कर्ण के शलाघ्य पूर्ण वर्णन पढ़कर हम बेवकूफ बन जाते हैं और बढ़ बढ़ कर दान देने की चेष्टा करते हैं। आज प्रत्येक शहर में दान के धन से धर्मशाला, मन्दिर, अनाथालय, विधवाश्रम, गुरुकुल अन्नक्षेत्र तथा भांतिर की संस्थाएं खुली हुई हैं। इनमें कितनी ही कुकर्म की जड़ हैं। हाँ, दान देने के भी सुअवसर आते हैं और जो सच्चे सात्विक दाता हैं वे उससे लाभ उठाते हैं। हरिश्चन्द्र की भांति भावुक दान देने वाले पुरुष की किसी भांति प्रशंसा नहीं की जा सकती।

मैं इस बात के उदाहरण सप्रमाण पेश कर सकता हूं कि अनेक मारवाड़ी व्यापारियों की दुकान में ३, ४ लाख तक की रकम धर्मादे खाते की जमा है। उस रक़म से वे अपनी बेटी का ब्याह करते, अपने मरे बाप का कारज करते हैं और अपने बेटे का मुण्डन और नामकरण संस्कार करते हैं। वे उस धन से सपरिवार तीर्थयात्रा भी करते हैं पर उनसे यह कोई नहीं

पूछता कि आखिर उनको इस धन को मनमाने ढंग पर काम लाने का किसने अधिकार दिया है।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि धर्म केवल मानसिक पवित्रता से सम्बन्ध रखने वाली चीज़ है। धन से उसका कभी भी सीधा सम्बन्ध नहीं है। हमको उचित है कि हम मन्दिरों में जाकर देवता पर पैसा न चढ़ावें क्योंकि देवता को पैसे की तनिक भी जरूरत नहीं है। वह बदमाश पुजारियों के पेट में जाता है। हमको यह भी उचित है कि रास्ते चलते भिखारियों को हम पैसा न फेंका करें और न हमें यह भी सोच लेना चाहिये कि जितनी समाज सेवा सम्बन्धी संस्थाएं खुली है उन सबमें ठीक ठीक समाज की सेवा हो रही है। हमें तर्कबुद्धि से आंख खोल कर काम लेना चाहिये। यदि हम धन कमा सकते हैं तो हमें इस बात का हक़ प्राप्त है कि हम उसे ठीक २ कार्यों में खर्च करें। बड़े २ कीमती पत्थरों के मन्दिर में देवता की स्थापना करना धर्म धन का सदुपयोग नहीं हैं। सच्चा देवता तो हमारे मन में है। उसी की उपासना हम बिना कौड़ी पैसा खर्च किये कर सकते हैं। अन्धों, लंगड़ों, अपाहिजों कोढ़ियों को भी इस प्रकार का दान देना ठीक नहीं,इससे उनकी दुर्दशा का अंत तो होता नहीं,—उल्टे दुर्दशा बढ़ जाती है। उनके लिये ऐसी संस्थाएं स्थापित होनी चाहियें जहाँ उनकी परवरिश की जाय। और प्रत्येक व्यक्ति को इसके लिये सचेष्ट रहना चाहिये कि वह चाहे जब अपने धन को भावुकता में फंसकर न फेंक दे।

(१२)

ऋषि दयानन्द और उनका कार्य

बाईस करोड़ अधमरे हिंदुओं में आज जो राष्ट्रीयता और जीवन की नई लहर हमें दीख पड़ती है, इसका श्रेय उस पुरुष श्रेष्ठ को है जो आर्य-समाज के प्रवर्तक के नाम से प्रसिद्ध है। उसने जो आग अपने तेज और तप जलाई, उसने हिन्दुओं की लाखों वर्ष की गुलामी और गन्दगी को भस्म कर दिया। उसने सोई हुई हिंदू जाति को ठोकर मार कर कहा—उठ! उठ!! ओ महाजातियों की माता उठ!!! भारत का यह विख्यात विद्वान, तपस्वी और इन्द्रिय-विजय पुरुष जन्म भर विरोधों को अपनी मुठमर्दी से कुचलता हुआ आगे ही बढ़ा चला गया। उसने उस प्राचीन दीवार को ढा दिया, जिसमें हिन्दू-जाति कैद थी, उसने दिमाग़ी गुलामी के सभी कारणों पर चोट की विशुद्ध भारतीयता और विशुद्ध वैदिक धर्म के अनुसार, जहाँ तक मानव समाज अध्यात्म या अधिभौतिक रीति से सुधारा जा सकता है, वहां तक उसे साहस पूर्वक सुधारा।

आज तो आतङ्क राजनीति का है और लोगों के मन में उसकी उत्क्रांति होने से जैसा प्रबल आन्दोलन खड़ा हो गया है, उन दिनों वही आतङ्क विश्वास का था। क्या मजाल थी, कि कोई हिन्दू-धर्म की सत्यानाशी रूढ़ियों के बिरुद्ध आवाज उठा

सके। यह वह समय था, जब मुग़ल-मम्राज्य विध्वंस हो चुका था, जब सन् ५७ का विप्लव एक बार हिन्दू-समाज को ज़ोर से हिलाकर बेहोश कर चुका था और अङ्गरेज़ी सत्ता और भी अधिक जम कर बैठ गई थी।

उस समय विधवाओं का विवाह उच्च हिन्दुओं के लिए अतिशय भयानक पाप था। उससे थोड़े ही काल पूर्व तक विधवाएं मुर्दे पति के साथ जीती जलाई जाती रही थीं और हिन्दुओं की सभी उन धर्म-पुस्तकों में, जो आम तौर से हिन्दू गृहस्थों में पढ़ी जातीं तथा आदर से देखी जाती थीं—स्त्रियों की कठोर और एक देशीय पतिव्रत धर्म की शिक्षा दी गई थी! पति ही उनका देवता—पति ही उनका परमेश्वर—पति ही उनका पूज्य पुरुष था—फिर वह पति चाहे कोढ़ी, कलङ्की, लुच्चा, लबार, बदमाश, शराबी, व्याभिचारी, चोर और नीच वृत्ति का हो क्यों न हो। धर्म-ग्रन्थों में ऐसे पतित पति की तन, मन, धन से सेवा किए जाना पतिव्रता का आदर्श बखाना गया था और पति को पत्नी के प्रति कैसा रहना चाहिए—इसकी कोई मर्यादा न थी—प्रत्युत जहां जीते जी ऐसे भयानक घृणास्पद पति की देवता के समान पूजा करना उसका धर्म था—और उसके मर जाने पर जीवित उसके साथ जल जाने का विधान था, वहां पुरुषों को भी चाहे जितने विवाह करने की खुली छुट्टी थी!!

बालिकाएँ अबोधावस्था में व्याही जाती थीं और रजस्वला कुमारी को देखने से ही उन बदनसीब पिताओं को पाप लगता

था। और प्रायः बड़े-बड़े घरों की कन्यायें शैशव अवस्था ही में ब्याही जाती थी और वे समर्थ होने से प्रथम ही प्रायः विधवा हो जाती थी। न स्त्रियों को—न बालिकाओं को विद्या पढ़ाने का रिवाज था। न लड़कों की भाँति उनका सम्मान था, न उनका आदर से पालन होता था। वे पराये घर की कूड़ा-कर्कट समझी जाती थी। ऐसा कोई घर न था, जहां विधवाओं का विलाप न हो, जहाँ नारियाँ पालतू पशुओं की भाँति उद्देश्यहीन अपने जीवनों को अन्धकार में व्यतीत न करती हों!

अछूत और निम्न श्रेणी के पुरुष और स्त्रियों का जीवन हाहाकारपूर्ण था। वे सर्वथा मनुष्यता और नागरिकता के अधिकारों से पतित और तिरस्कारपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। वे पीढ़ियों से गन्दे काम करते, गन्दे रहते, जूठन और सड़ी गली वस्तु खाते और घृणास्पद स्थानों में रहते थे, फिर उनके प्रति समाज की तनिक भी सहानुभूति न थी। छोटे और बड़ेपन की नीच भावना प्रत्येक के मन में थी, प्रत्येक पुरुष कुल जाति में जिसको उच्च समझता था, उसके द्वारा चुपचाप अपमान सहन कर लेता था और जिसे अपने नीचा समझता था उसका स्वयं अपमान करता था! उनको इस लोक की सुन्दरता का ज्ञान था—न परलोक का। विवेक और आत्मा सम्बन्धी बातें सुनने तक की सजा मृत्यु थी! वे अभागे मनुष्यों की योनि में जन्म लेकर करोड़ों की संख्या में अत्यन्त घृणास्पद

नारकीय जीवन चुपचाप व्यतीत करते आ रहे थे।

ईसाई और मुसलमानों ने अपने २ ढंग पर हिन्दुओं को खासकर उन अभागी और पतित नीच जातियों को अपने अन्दर लेना प्रारम्भ कर दिया था। और कोई भी हिन्दू—चाहे वह अति नीच ही क्यों न हो, किसी भी ईसाई या मुसलमान की छुई कोई वस्तु को खा लेने पर ही जाति बहिष्कृत समझा जाता था और उसका हिन्दू समाज में रहना असम्भव हो जाता था। दिन पर दिन हिन्दू-जाति का ह्रास हो रहा था। वे ही नीच हिन्दू ईसाई और मुसलमान होकर, उनकी शह पाकर हिन्दुओं पर अधिकाधिक अत्याचार करते और अपने अपमानों का बदला लेते थे! लगातार सैकड़ों वर्षों से गुलामी के वातावरण में पिस कर हिन्दुओं में किसी भी प्रकार का कोई वीरतापूर्ण मुकाबला करने की सामर्थ्य नहीं रही थी। वे केवल कायर आक्रमण करते थे और झूठे गर्व और थोथी बड़प्पन की डींग में ही अपनी शान समझते थे। हिन्दुओं की पुरानी संस्कृति खो गई थी। उनकी जातीयता नष्ट हो चुकी थी। वह अनगिनत जातियाँ और साम्प्रदायों में छिन्न-भिन्न हो रहे थे। जैसे कोई बड़े भारी महल खण्डहर होकर ढह गया हो। उसमें न जीवन के लक्षण थे, न ज्योति थी! वह पुराने गौरवमय इतिहास की लोथ थी, जिसे ईसाई और मुसलमान बेफिक्री से पेट भर कर खा रहे थे, और कोई उनको रोकने वाला न था।

वह समय था, ऋषि दयानन्द ने जन्म लिया। वेदों का

अध्ययन किया और सत्य मार्ग को खोजना प्रारम्भ किया। उसने मनन, विवेक और साहस एवं प्रतिभा से अपना नया मार्ग चुना उससे अन्धविश्वासों और रूढ़ियों के विपरीत आवाज ऊंची की और वीरतापूर्वक वह लोगों के द्वार-द्वार जाकर चिल्ला कर सत्य का संदेश देता रहा। उसने कष्टों की, विरोधों की; खतरों की परवाह न की। उसने हिन्दू धर्म का, हिन्दू समाज का हिन्दू संस्कृति का इस ढङ्ग से संशोधन करना चाहा कि उसकी मौलिकता और आत्मा का घात न हो। उसने पुराणों और फालतू बातों में फंसे लोगों को प्राचीन वेद पढ़ने की सलाह दी, तन्त्र-मन्त्र में उल्लू बने लोगों को दर्शन और उपनिषदों से आत्म-तत्व सीखने की रीति बताई। उसने असंख्य देवताओं के स्थान पर एक सर्व-शक्तिमान परमेश्वर की उपासना की सम्मति दी उसने सब अन्धविश्वासों, सब कुरीतियों, सब मूर्खताओं को छोड़ कर अन्तःकरण और विवेक से जीवित रहने की शिक्षा दी उसने कन्याओं और स्त्रियों को शिक्षित करने का खुला विधान बता कर उन्हें समाज में बराबर का अधिकारी बताया। उसने धर्म-भ्रष्ट हिन्दुओं की फिर से शुद्धि करके हिन्दुओं के ह्रास को रोका। उसने विधवा विवाह पर प्रकाश डाला और अछूतों के विषय में उदारता और न्याय से व्यवहार करने की सम्मति दी। उसने राजाओं को प्रजारंजन और प्रजा को राजा का आज्ञाकारी बनने की सलाह दी। उसने स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, और यम नियम के पालन पर जोर दिया। उसने शिल्प,

व्यापार, सङ्गठन और समाज-शास्त्र के सच्चे और उन्नत उपायों को मनुष्यों के सन्मुख पेश किया और इस प्रकार वह प्रसिद्ध और महान धर्माचार्य और समाज-सुधारक हिन्दू जाति का एक सच्चा और साहसी सुधारक सिद्ध हुआ।

उसकी नैतिक सफलता आज बिल्कुल स्पष्ट है। हिन्दुओं की वह पुरानी दीवारें टूट गईं, हिन्दु जाति स्वतन्त्रता और विवेक से तेज़ी के साथ सभी सुधारों को कर रही है। हिंदू घरों में आज असंख्य युवती कुमारिकाएँ बी० ए०, एम० ए०, एल एल० बी०, प्रोफेसर, वैरिस्टर बनी हुई हैं। बाल विवाह का तेज़ी से मूलोच्छेद हो रहा है। कन्या-शिक्षा और स्त्रियों के समानाधिकार की शैली क्या कुछ नहीं हो गई। अछूत लोगों को समाज में कन्धे से कन्धा भिड़ा कर देश के प्राङ्गण में खड़े होने के हौसले हुए हैं। ईसाई और मुसलमान, जो २२ करोड़ हिन्दुओं को अपना नर्म भोजन समझते थे—और २२ करोड़ हिन्दू उनसे सदैव भयभीत रहते थे, आज वे ५ लाख आर्यों से, न केवल भयभीत हैं, प्रत्युत उनकी प्रगति एक दम रुक गई है। आज हिन्दू समाज ने खुल्लमखुल्ला शुद्धि को अपना लिया है। लाखों परिवार फिर से सैकड़ों वर्ष बाद हिन्दू होकर बिरादरी में मिल गये हैं, और मिलते जा रहे हैं।

जब मैं गत दो हज़ार वर्षों के हिन्दू-धर्म के इतिहास पर दृष्टिपात करता हूँ, तो मैं कह सकता हूँ कि ऋषि दयानन्द

जैसा सफल और तेजस्वी धर्म और समाज का संशोधक इस बीच में नहीं पैदा हुआ। और हिन्दू जाति को नवयुग का उन्नत रूप देने का सच्चा श्रेय उसी ब्रह्मचारी पुरुष-श्रेष्ठ को मिलना चाहिए। उस पुरुष श्रेष्ठ की मृत्यु को आज ४७ वर्ष व्यतीत हो गए। इस ऋषि ने ६० वर्ष शरीर धारण किया और सिर्फ २० वर्ष तक उन्होंने अपने सिद्धांतों का प्रचार और आविष्कार किया। जिस ँ प्रारम्भ के ११ वर्ष तक वे केवल अपने सिद्धांतों पर मनन करने, विचारों को स्थिर करने, एवं भारत भर में भ्रमण करने और छोटी-छोटी कुरीतियों के विरुद्ध साहसपूर्ण उपदेश करने में लगे रहे। मृत्यु से ६ वर्ष प्रथम उन्होंने लेखनी पकड़ी और नौ वर्ष के अन्दर उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे, अन गिनत शास्त्रार्थ किये और व्याख्यान दिये।

ऋषि दयानन्द ने अकेले वेद का उद्धार करके और वेदों को व्यवहारिक जीवन से संलग्न करके और उनके ऐसे भाष्य रचके कि जिनका सम्बन्ध ऐहिलौकिक जीवन से भी है, असाधारण काम किया। ऋषि दयानन्द से पहिले भारत के हिन्दू विद्वान वेदों का नाम सुनते थे, वेदों के प्रति उनके मन में आदर भी था लेकिन वेदों के विषय का उनको कुछ भी ज्ञान न था।

ऋषि दयानन्द के यह घोषणा करते ही इस प्रकार के साहसी लोगों ने वेदों को स्वतः प्रमाण मानकर तमाम उत्तर-

कालीन धर्म ग्रन्थों के प्रति आन्दोलन प्रारम्भ किया और ऋषि दयानन्द की सहायता की। ऋषि दयानन्द का उस समय आर्यसमाज को स्थापित कर लेना और इतनी सफलता से हिंदू समाज के अन्तस्त तक पहुँच जाने का जो रहस्य है वह केवल वेदों को इतनी मजबूती से पकड़ता ही है। अगर ऋषि दयानन्द उतनी मजबूती से वेदों को नहीं पकड़ते और उन्हें स्वतः प्रमाण नहीं मानते तो ऋषि दयानन्द की बात हिन्दू समाज में बिल्कुल नहीं सुनी जाती और उनको उसी प्रकार घृणा की दृष्टि से देखा जाता जिस प्रकार कि ईसाई और मुसलमानों को आज भी देखा जाता है। मैं यहाँ यह बतला देना चाहता हूँ कि ऋषि दयानन्द ने हिन्दुओं के विपरीत और हिन्दू धर्म के विपरीत कितनी तीखी और कठोर आवाज़ उठाई है कि जितनी ईसाई और मुसलमानों ने भी नहीं उठाई परन्तु ऋषि दयानन्द और उनके अनुयायी हिन्दू समाज से बहिष्कृत नहीं हुए। उनके रोटी बेटी के सम्बन्ध और पारिवारिक सम्बन्ध हिन्दू समाज में घुले मिले हैं और दिन पर दिन आर्यसमाज हिन्दू समाज में घुलता जा रहा है। इसका मूल कारण यह था कि उन्होंने वेदों को उसी ढंग से अपनाया कि जिस ढंग से कि प्राचीन हिन्दू अपनाते रहे थे। और वेदों के विपरीत जितने धर्म ग्रन्थ हैं वे अमान्य हैं चूंकि वे स्वतः प्रमाण हैं। उनको वही आर्य माननीय है जो वेदों के अनुकूल हों। यही एक युक्ति थी कि जिसने ऋषि दयानन्द को हिन्दू समाज के सिर पर बिठाल

दिया और हिन्दु समाज पर विजयी बनाया।

इसीलिए चूंकि वेदों को स्वतः प्रमाण स्वीकार किया गया था, वेद अपौरुषेय है और ईश्वर कृत है यह भी मानना अनिवार्य था और यह भी प्राचीन सिद्धान्त था जो कि वैदिक हिन्दू विद्वान मानते रहे थे। आज हिन्दू समाज में वह धार्मिक जड़ता नहीं रही। हिन्दु समाज में भी एक से एक बढ़कर स्वतन्त्र विद्वान पैदा हो गए। ऋषि दयानन्द के बाद पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों की ग्रन्थियों को खोल दिया और हिन्दू जाति के प्रमुख विद्वानों में भी वह साहस पैदा हो गया कि वह हजारों वर्षों से चली आती हुई रूढ़ि से प्रभावित होकर यह कह दें कि वेद ईश्वर-कृत नहीं है और वेद ही एक ऐसी चीज़ नहीं है कि जिसमें दुनियाँ का सब कुछ भरा हुआ है। अलबत वेद एक अत्यन्त प्राचीन मनुष्य जाति की सभ्यता के सर्व प्रथम साहित्य की विभूति है। हिन्दु समाज में जो इनेगिने प्रमुख पुरुष इस प्रकार की आवाज़ ऊँची करने वाले हुए उनमें सी० आर० दास, महात्मा तिलक, प्रो० अविनाशचन्द्र दास और इनके बाद दूसरे बहुत से व्यक्ति हैं कि जिनके नाम इस समय गिनाना बिल्कुल व्यर्थ है। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० सत्यव्रत सामश्रमी भी यही मत रखते थे। सर रमेशचन्द्रदत्त वेदों का काल ई० सन् से दो हजार वर्ष से १४ सौ वर्ष पूर्व तक मानते हैं। उनका ख़याल है कि वेदों का निर्माण उस समय में हुआ जब कि आर्य लोग सिन्ध की घाटियों में रहते थे। अधिकांश

पाश्चात्य विद्वानों का भी यही मत है।

आर० सी० दत्त का यह कहना है कि विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छक एवं दशम मंडल के ऋषि वर्ग ऋक् प्रकाशक ऋषियों के मध्य आधुनिक मालूम पड़ते हैं। व्याकरणाचार्य पाणिनी मसीह से पूर्व चतुर्थ शताब्दी में हुए थे यह बात अब निर्विवाद हो गई है। यह युग सूत्रकाल का मध्यवर्ती युग था। ऋग्वेद की विशेष शाखाओं की शौनक द्वारा की गई रचना यास्क के निरक्त के बाद की है, क्योंकि शौनक की वृहसंहिता में यास्क के निरुक्त का उल्लेख है। इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है, कि यास्क पाणिनी से लगभग १५० वर्ष बाद हुआ। सूत्र ग्रन्थों का आरम्भ काल बुद्ध के प्रथम का है, क्योंकि जैन तथा बौद्ध दर्शन शास्त्र हिंदु दर्शन शास्त्र के आधार पर आधारित हैं। तथा उपनिषदों के ही आधार पर उनकी रचना हुई है। उपनिषद् तथा ब्राह्मण का परिशिष्ट इन दर्शनों का क्रमिक विकास है। दो चार सौ वर्षों के विराट् साहित्य का ऐसा विकास नहीं हो सकता। वेदों के बाद ऋषि दयानन्द के दो ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हैं—एक सत्यार्थ-प्रकाश दूसरा संस्कार विधि। परंतु वास्तव में ये दोनों ही पुस्तकें ऋषि दयानन्द ने पुस्तक रूप में नहीं लिखी थीं। सत्यार्थ-प्रकाश तो उनके किये गये शास्त्रार्थों और व्याख्यानों के नोटों का संग्रह था जो कि कुछ लोगों ने आग्रह करके एकत्रित किया था। बाद में परिवर्तित और परिवर्धित किया गया। संस्कार

बिधि कर्मकांड सम्बन्धी कुछ क्रियाओं का संग्रह मात्र है। सत्यार्थ प्रकाश की सबसे पहली छपी हुई प्रति को देखिए। उस प्रति में और आज के सत्यार्थप्रकाश की प्रति में बहुत ही अंतर है। सत्यार्थ प्रकाश की वह प्रति रद्द कर दी गई थी और उसकी जगह वर्तमान सत्यार्थप्रकाश प्रचलित कर दिया गया था। वर्तमान सत्यार्थप्रकाश में भी बहुत संशोधन और सुधार की आवश्यकता है। जो प्रमाण इसमें उद्धृत किये गये हैं, उनके स्थल बिलकुल सही नहीं लिखे गये है। इसी प्रकार दूसरे संप्रदायों के सम्बन्ध में जो आपत्तियाँ उपस्थित की गई हैं वे अब बहुत पुरानी पड़ गई हैं। आज सत्यार्थप्रकाश की बड़ी भारी प्रतिष्ठा है और संसार की कई भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ है। धीरे धीरे सत्यार्थप्रकाश उसी प्रकार का धर्म-ग्रन्थ बनता चला जा रहा है जैसा कि मुसलमानों का कुरानशरीफ है। बहुत समय पूर्व से आर्य समाज के कुछ विद्वान लोग सत्यार्थप्रकाश के प्रमाणों को प्रमाण रूप पेश करते हैं और सत्यार्थप्रकाश में लिखी हुई किसी भी पंक्ति का अगर कोई संप्रदाय वाले विरोध करते हैं तो उस पर खासा अच्छा शास्त्रार्थ कर लिया जाता है। सच्ची बात अगर पूछी जाय तो यह कहना पड़ेगा कि आर्यसमाज का धार्मिक सिद्धांत वेद नहीं बल्कि सत्यार्थप्रकाश है। अब हम यहाँ पर यह बतला देना चाहते हैं कि सत्यार्थप्रकाश के अन्दर जिन २ बातों पर बिचार प्रदर्शित किया गया है, वह उसी दृष्टि कोण

से किया गया है जिसकी कि चर्चा मैं पीछे कर चुका हूँ। उन में इस बात का पूरा पूरा विचार किया गया है कि कौन बात धार्मिक या राष्ट्रीय दृष्टि से लाभदायक है। इतना ही नहीं बल्कि पुराने धर्म शास्त्रों के सहारे से ही उनकी रचना की गई है जिससे कि लोगों को इसके विरोध करने की कोई गुंजायस ही नहीं रह जावे। अब सबसे जबरदस्त बात जो विचारने के काबिल है वह वैदिक देवताओं के सम्बन्ध में है। इसमें तो कोई शक नहीं कि प्राचीन वैदिक धर्म वाले भिन्न २ देवताओं का अस्तित्व मानते थे और वेदों में भिन्न २ देवता भिन्न २ शक्ति वाले माने गये हैं। लेकिन ऋषि दयानन्द ने किसी भी ऐसे देवता को स्वीकार नहीं किया जो ईश्वर से पृथक् अपना कोई अस्तित्व रखता हो। ऋषि दयानन्द ने किसी भी देवता को नहीं माना, वे एकेश्वर वादी हैं यह उनकी मौलिकता है। चूँकि ऋषि दयानन्द वेदों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते थे इसलिए वेदों के अन्दर सोम, इन्द्र, आदित्य, चन्द्र, कुबेर, अग्नि, वरुण आदि २ देवताओं का वर्णन किया गया है वे सब देवता सत्यार्थ प्रकाश के प्रारम्भ ही में व्युत्पत्ति के अर्थों द्वारा ईश्वर ही के नाम घोषित किये गये हैं। इस प्रकार एकेश्वर वाद की रक्षा करते हुए उन तमाम देवताओं के अस्तित्व को भी मान लिया गया है कि ये तमाम देवता ईश्वर ही के नाम हैं। लेकिन यह बड़ी ही जबरदस्त क्लिष्ट कल्पना है क्यों कि आगे चलकर जब कर्म कांड का प्रश्न आता है जिसका कि

अभी हम वर्णन करें और जिसके आधार स्वरूप पुस्तक संस्कार विधि बनाई गई है, तो हमें पता चलेगा कि किस प्रकार वेद मन्त्रों को पढ़ पढ़ कर यज्ञ में आहूतियाँ देते हैं। इन तमाम देवताओं को अलग अगल आहूतियाँ देनी पड़ती हैं। इनके एक एक के अलग २ नाम लेकर, भिन्न २ वेद मन्त्रों को पढ़ कर उनके नाम की आहूतियाँ देते हैं, जौ घी चावल पत्र आदि अनेकों चीज़ों की आहूतियाँ देते हैं। क्या कोई शख्स बतला सकता है कि इन तमाम आहूतियों के देने से क्या वे देवता प्रसन्न होते हैं।

यह स्पष्ट है कि यज्ञ मध्य कालीन ब्राह्मणों की पेट पूजा का ढकोसला मात्र था। ऋषि दयानन्द इस ढकोसले को अस्वीकार करते हैं। वे यह कहते हैं कि यज्ञ के करने से हवा शुद्ध रहती है अतएव यज्ञ करना आवश्यक है। लेकिन विचार कर देखा जाय तो वह केवल वायु शुद्धि के लिये ही नहीं लेकिन वह अंध विश्वास और अंध परम्परा का द्योतक है जो कि—मध्य काल के वैदिक पुरुषों में थी। तो सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में इन तमाम देवताओं का ईश्वर अर्थ करने पर भी इन देवताओं से छुटकारा नहीं मिला है इसके बाद सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित अन्य आर्य सिद्धान्तों पर भी आपत्तियाँ उठ चुकी हैं जैसे कि नियोग।

मैं यहाँ उन दो अत्यन्त महत्वपूर्ण और अज्ञेय विषयों पर विवाद इस समय नहीं करना चाहता जो ऋषि दयानन्द के

निराले सिद्धान्त हैं। उनमें से एक तो मुक्ति से पुनरावृत्ति अर्थात् मुक्त जीवों का फिर लौट कर आना और दूसरा प्रारम्भिक अमैथुनी-सृष्टि ये दोनों ही विषय विद्वानों के विचार के लिए छोड़ देता हूँ। वेदों के अपौरुषेयत्व पर मैं पहले ही अपने विचार प्रगट कर चुका हूँ।

अब रह गई निराली अन्तिम बात—ईश्वर जीव और प्रकृति-इन तीनों स्थितियों का अस्तित्व अनादि काल से अनन्त काल तक रहना। अब तक के तमाम धर्माचार्यों की अपेक्षा ऋषि दयानन्द का यह सिद्धांत सबसे अधिक स्पष्ट मालूम होता है। मृत्यु के बाद जीवात्मा कहाँ जाता है और जीवात्मा क्या है ? कैसे दुबारा गर्भधारण करता है ? इस विषय पर हज़ारों वर्षों से विद्वानों ने विचार किया है, हमेशा करते रहेंगे परन्तु यह कोई आशा नहीं है कि किसी को इसका सच्चा और सही अर्थ मिलेगा। इस ही प्रकार सृष्टि का प्रारम्भ काल भी किस प्रकार शुरू हुआ और प्राणी किस प्रकार जगत में पैदा हुए और मनुष्यत्व का विकास कैसे हुआ ? यह भी प्राणी-शास्त्र-विद् पुरुषों ही का काम है, धार्मिक पुरुषों का नहीं।

दूसरे मत मतान्तरों के खण्डन मण्डन के विषय में ऋषि दयानन्द का लिखना बहुत तीखा और खरा है। जिस काल में ऋषि दयानन्द पैदा हुए थे उस काल के वातावरण को देखते हुए इसमें कोई अनौचित्य भी नहीं है। लेकिन इस बात को हम स्वीकार करते हैं कि वर्तमान काल में उसी प्रकार की शैली

से दूसरे मत मतान्तरों पर आक्रमण करना बिल्कुल ही अनुचित है। इसके सिवा जैसाकि मैं पहले कह चुका हूँ कि सत्यार्थ प्रकाश में जो उद्धरण हैं उनके स्थल अधिकांश में गलत हैं और उनके संशोधन की बड़ी भारी आवश्यकता है।

अब तक इन पिछले ५० वर्षों में तो सत्थार्थप्रकाश के स्थान पर हिन्दी भाषा में विवेक पूर्ण युक्ति और प्रमाणों से युक्त जो केवल शब्द प्रमाण ही न हो बल्कि तर्क गम्य और युक्ति युक्त भी हो, ऐसे कई ग्रन्थों का निर्माण हो जाना चाहिये था परन्तु दुःख तो इसी बात का है कि ऐसा नहीं हुआ।

संस्कार विधि सर्वथा कर्मकाण्ड की एक पुस्तक है। इसका आधार यद्यपि वेद मन्त्र जरूर हैं लेकिन मूल आधार इसका गृह-सूत्र है। गृह सूत्र ही के विधानों की उसमें चर्चा है और गृह सूत्र ही के आधार पर उसमें सब प्रकार के संस्कारों का वर्णन किया गया है। वास्तव में यह उस ही प्रकार की पुस्तक है जैसी कि अग्नि पूजक लोगों की होनी चाहिए। और यह खुल्लम खुल्ला अग्नि-पूजा है। विविध देवताओं से युक्त मन्त्रों को बोलकर भिन्न २ प्रकार की आहूतियां देना, भिन्न २ प्रकार के मन्त्रों को पढ़कर भिन्न २ प्रकार की पूजाएँ करना। रुद्र, वसु आदित्य इत्यादि को पानी के छींटे देना मधुपर्क देना भिन्न २ समय और विधियों से भिन्न २ प्रकार के आचार प्रकट करना। कहीं पर सोम वृक्ष की पत्तियाँ, कहीं दूध, कहीं दही, कहीं शहद, कहीं कुछ, और कहीं कुछ ये समस्त

कर्मकांड संस्कार विधि में भरे पड़े हैं जिनमें सत्य कुछ भी नहीं हैं। पर उसमें अधिकांश आडंबर ढोंग और ढकोसला मात्र है। और इस बात को हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि इस प्रकार के कर्म कांड से कोई भी लाभ नहीं हो सकता है। यदि जिस प्रकार से अग्नि में घृत इत्यादि की आहुति देना पुण्य कर्म है उसी प्रकार मन्दिर में पत्थर की मूर्ति के सामने इन वस्तुओं का चढ़ाना भी धर्म कृत्यों में स्वीकृत हो सकता है। यह बात भी बिल्कुल वैसी ही है।

वायु शुद्धि के लिए तो अग्निहोत्र होता ही नहीं, वह तो विविध कारणों से होता है। क्योंकि आग जलने से सदा वायु अशुद्ध होती है गर्भाधान संस्कार के प्रकरण में इस प्रकार के मन्त्रों का वर्णन है जिनमें कि गर्भ धारण की प्रार्थना है। क्या अग्नि में आहुति देने से कोई ऐसा देवता है कि जो प्रसन्न हो जाये और गर्भ धारण करवा दे? क्या यह अन्ध-विश्वास नहीं है? इसी प्रकार दूसरे संस्कारों में भी इसी प्रकार की बातें हैं जिनको कि विस्तार के भय से हम यहाँ नहीं लिखते। हम केवल यही चाहते हैं कि आर्यसमाज के विद्वान लोग इन तमाम बातों पर विचार करें कि ये तमाम बातें कहाँ तक ठीक हैं।

लेकिन सब से जबरदस्त बात जिसको कि मैं भयानक कह सकता हूँ वह संस्कार विधि में अवैदिक विवाह विधि है। विवाह विधि में तीन मुख्य क्रियाएँ की जाती हैं। पहली क्रिया

कन्यादान के सम्बन्ध में है, दूसरी क्रिया सप्तपदी के सम्बन्ध में है और तीसरी क्रिया उत्तर क्रिया कहलाती है। मैं प्रत्येक विद्वान को चैलेंज देता हूँ कि वह किसी भी वैदिक प्रमाण द्वारा यह सिद्ध कर दे कि कन्यादान करने का अधिकार पिता को किस वेद में है। यद्यपि शब्द प्रमाण को मैं बिल्कुल महत्व नहीं देता तो भी यह कहना चाहता हूँ कि वेदों में कन्या के दान करने का विधान कहीं पर भी नहीं है। कन्यादान की परिपाटी मनुस्मृति की बनाई हुई है। और मनुस्मृति ने विवाह के आठ नियम निर्माण किये हैं वे इतने वाहियात और दोष पूर्ण हैं कि हम उन्हें अपराध कह सकते हैं। सारे संसार की किन्हीं भी जातियों में इस प्रकार की विवाह विधियाँ नहीं हैं। असभ्य से असभ्य जाति के माता पिता भी अपनी कन्या का दान नहीं करते। यह कन्यादान का परिपाटी जैसा कि मैंने कहा है स्मृतियों के आधार पर हिंदू समाज में प्रचलित हुई हैं और उसी का संशोधन करके ऋषि दयानन्द ने ग्रहण किया है। वह संशोधन भी इतना ही है कि नवग्रहों का पूजन उतने विस्तार और पाखंड से नहीं किया गया। साथ ही हवन को महत्व दिया गया है। बस वैदिक विवाह पद्धति में यही परिवर्तन कर दिया गया है। लेकिन मैं बता देना चाहता हूँ कि प्राचीन काल में विवाह के ये नियम नहीं थे। आर्य समाज मानता है कि युवती कन्याएं और युवा लड़के दोनों ही गुण कर्म स्वभावानुसार एक दूसरे का वरण करें और एक

दूसरे के प्रति पति पत्नी का कर्त्तव्य निवाहें। सबसे बड़ी मजेदार बात तो यह है कि कन्यादान करने के बाद वेद मंत्रों के अनुसार प्रतिज्ञाएं की जाती हैं। यह कहाँ की विधि है कि पहले तो कन्या को दान कर दिया जाय और फिर प्रतिज्ञाएं की जायं पहले कांट्रेक्ट पर साइन करके फिर शर्तें लिखी जायं। कन्यादान के बाद तो वे पति पत्नी हो ही चुके फिर शर्तें करने की कौनसी गुंजायश रह जाती है।

जिस समय अंग्रेजों ने भारतवर्ष को दखल करना शुरू किया था तो उस समय शुरू २ में मद्रास और कलकत्ते को दखल किया और वहाँ पर जो पंडित उन्हें मिले वे स्मृतियों को मानने वाले थे। स्मृतियों के मानने वाले पंडितों ही से वास्ता पड़ने के कारण अंग्रेजों ने जो हिन्दु ला बनाया वह बिल्कुल स्मृतियों ही के आधार पर बना। आज लगभग १०० वर्षों से उसी हिन्दु ला के आधार पर भारतवर्ष की करोड़ों स्त्रियों के भाग्य के फैसले अदालत में किये जाते हैं और उसका यह परिणाम है कि हिंदु स्त्री को पति की सम्पत्ति में दुनियाँ की असभ्य से असभ्य पत्नी की अपेक्षा भी कम से कम अधिकार प्राप्त है। वह केवल अपने पति के परिवार से विधवा होने पर सिर्फ रोटी और कपड़े प्राप्त करने को अधिकारिणी हो सकती है वह भी उस हालत में कि जब वह अपने परिवार की आज्ञाकारिणी बनी रहे पिता की संपत्ति में तो उसका कोई अधिकार है ही नहीं किंतु पति और ससुर की संपत्ति में भी उसका कोई अधिकार नहीं रह जाता।

सनातन धर्मियों के यहां दूध पीते बच्चों को गोद में लेकर जब फेरे किये जाते हैं वहां तो कन्यादान सहन किया जा सकता है अबोध लड़के लड़कियों को तो एक दूसरे के प्रति दान किया जा सकता है लेकिन आर्य समाज जो यह दावा करता है कि हमें स्त्रियों को शिक्षा देना है उन्हें समाज में समानता का अधिकार देकर उन्हें स्वतंत्र बनाना है तो उसके लिए विवाह में कन्यादान करना केवल उसके अधिकारों का अपहरण करना ही नहीं बल्कि महान पाप करना है।

१३

हमारा सड़ा गला वर्णाश्रम धर्म

दुर्भाग्य और कंगाली की एक यह निशानी होती है कि ऐसे लोग सड़ी गली चीजों को बड़ी हिफ़ाजत से सम्हाल कर रक्खे रहते हैं। वर्णाश्रम धर्म भी ऐसी ही रद्दी चीज़ है, जिसे हिन्दू समाज सम्हाल कर रक्खे हुए है।

वर्ण और आश्रमों का वर्तमान रूप अवैदिक है, यदि हम यह कहें तो शायद आपको आश्चर्य होगा। परन्तु हम निश्चय पूर्वक यह कहना चाहते हैं कि अत्यन्त प्राचीन काल में आर्य-जाति में ये विभाग नहीं थे। और आज वर्तमान स्वरूप में इनका रहना समाज के लिए अनिष्टकर भी है।

हम प्रथम वर्ण भेद की ही विवेचना करेंगे। यह वह चीज़ है जिसके कारण आर्य जाति के समय २ पर कई भेद हुए हैं! आज नये विचारों के लोगों के मन में यह धारणा पैदा होती है कि क्या आर्यसमाज भी जो हिन्दू जाति को सुधारने का

दावेदार है—वर्ण और आश्रमों के भेदों के दकियानूसी नियमों को मानता रहेगा ?

सबसे प्रथम हम ऋग्वेद ही की बात कहना चाहते हैं। ऋग्वेद एक बहुत ही महत्वपूर्ण वेद है। विधर्मियों और विदेशियों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि ऋग्वेद दुनिया की सबसे पुरानी और मान्य पुस्तक है। ऋग्वेद को पढ़ने से मालूम होता है कि उसमें कहीं भेद की चर्चा नहीं है, ब्राह्मण शब्द का कहीं जिक्र ही नहीं है। जहाँ कहीं ब्राह्मण शब्द आया है—मन्त्रों के अर्थों में या पुरोहित के अर्थों में। ऋग्वेद पुरोहित का अभिप्राय यज्ञ कराने वाला लेता है। क्षत्रिय शब्द का भी कहीं प्रयोग नहीं देखा जाता। क्षत्र शब्द ज़रूर आया है, पर वह समर्थ पुरुष के अर्थ में। वैश्य शब्द भी ऋग्वेद में कहीं नहीं आया है। विश शब्द आया है। विश का अर्थ जन साधारण है। ऋग्वेद में शूद्र शब्द भी नहीं है। दास या दस्यु शब्द अनार्यों के लिए आया है। अन्य वेदों में अवश्य चारों ही वर्णों की चर्चा स्थान २ पर मिलती है।

परन्तु वर्णों का सबसे प्रधान वर्णन तो हमें स्मृतियों में ही प्राप्त होता है। स्मृतियों ने ही वर्ण विभाग की बड़ी भारी चेष्टा की है। मनुस्मृति में चारों वर्णों की विस्तृत व्याख्या है। सबसे बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह है कि वैदिक ग्रन्थों में जिस वर्ण संकर का नाम भी नहीं सुनाई पड़ता, स्मृतियों ने उनके अनुलोम प्रतिलोम की दृष्टि में लगभग ६०-७० नवीन

जातियाँ बना दी हैं। परन्तु ऋग्वेद में और अन्य वेदों में भी वर्ण संकर का कहीं नाम नहीं है। चारों वेदों में कहीं भी वर्ण संकर शब्द नहीं मिलता।

बौद्ध धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के पढ़ने से हमें इस बात का पता चला है कि बुद्ध का सबसे अधिक सफल होने का सबसे जबरदस्त कारण यह था कि उसने अपने धर्म से वर्णभेदों को बिलकुल उठा दिया था। उन्होंने अपने धर्म में वर्णभेद को कोई स्थान ही नहीं दिया था।

ब्राह्मणों और क्षत्रियों में बहुत काल तक यह विवाद रहा कि दोनों जातियों में सबसे श्रेष्ठ कौनसी है। इस बात के लिए दोनों जातियों में झगड़ा भी हुआ और आखिर क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के सामने अपना सर झुकाया और उन्हें अपना पूज्य समझा। ब्राह्मणों को प्रथम दर्जा मिला। इस प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रियों ने परस्पर मिलकर दूसरी जातियों को दबाने का प्रयत्न किया। हम प्राचीन ग्रन्थों में वैश्यों की कोई प्रतिष्ठा ही नहीं देखते। बौद्ध धर्म ने वर्णों की मर्यादा को छिन्न-भिन्न कर दिया। उन्होंने खुले शब्दों में यह कहा था—चाहे कोई शूद्र हो अथवा और कोई नीच जाति का हो, वह मेरे धर्म के तात्विक सिद्धांत व बचनों को ठीक तौर से मनन करेगा तो वह निर्वाण-पद को पा सकता है। इसीलिए आप बौद्ध धर्म के अन्दर देखिए कि वैश्याओं जैसी पतिताओं ने भी भिक्षुणी बन कर बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार किया और बुद्ध पद को प्राप्त किया। बुद्ध ने

वर्णों के विभाग को नष्ट कर दिया था इसी कारण उसने विदेशों में अपने धर्म का प्रचार करने में सफलता प्राप्त की।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से चीन और यूरोप के अन्य देशों से लोग शिक्षा प्राप्त करने आते रहे थे। उन्होंने हिन्दू धर्म को ग्रहण करना चाहा परन्तु इस ही वर्ण भेद के झंझट के कारण वे आर्य-धर्म को ग्रहण करने से रह गए। बुद्ध ने इस मर्यादा को तोड़ दिया था। इसलिए सम्पूर्ण चीन, जापान, बर्मा, लङ्का, जावा, सुमात्रा, तिब्बत, श्याम, कम्बोडिया, माक्सिको आदि देशों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया और आधी पूर्वीय पृथ्वी पर बौद्ध धर्म का डंका फहराया।

महाभारत कालीन वर्ण व्यवस्था के विषय में हम यह कह कह सकते हैं कि ब्राह्मण काल से लेकर यूनानियों के आक्रमण तक वर्णों के हालात हमें महाभारत ही से मिल सकते हैं।

वर्ण और आश्रम का विभाग आर्य और हिन्दू समाज को छोड़ कर दुनियाँ में और किसी जाति और धर्म के अंदर नहीं है। यूरोप और अरब आदि देशों में भी अनेकों स्त्री और पुरुष ऐसे साधु होते रहे हैं कि जिन्होंने गृहस्थ धर्म को त्याग कर सन्यास का जीवन व्यतीत किया है। लेकिन जहाँ तक हमारा विश्वास है—यह सब बौद्ध-धर्म के भिक्षुओं का अनुकरण है। बौद्ध-धर्म की छाप के बाद ही मनुष्य-समाज में त्याग और वैराग्य पूर्वक जीवन व्यतीत करने की भावना

उत्पन्न हुई है। भारतवर्ष में बुद्ध ने हिन्दू धर्म के अन्दर जन्म लिया और हिन्दू-धर्म के एक संशोधित रूप को ही उसने बौद्ध-धर्म के रूप में संसार के सामने उपस्थित किया। लेकिन जो सबसे बड़ा भारी सुधार उसने किया वह जाति और वर्ण के भेद को छिन्न भिन्न कर देना था। उसने ब्राह्मण में और शूद्र में कोई भेद नहीं रक्खा। उसने ब्राह्मण और शूद्र सबको समान ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार दिया और जिससे कि सब लोग समान रूप से ज्ञान प्राप्त करें—उसने प्रचलित भाषा में अपनी धार्मिक आज्ञाओं और प्रवचनों को प्रचलित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि बड़ी तेज़ी के साथ दलित जाति के लोगों ने बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया। उस समय जो बौद्ध हुए वे अधिकांश दलित जाति के थे और वर्ण-भेद की दृष्टि से हिन्दू-समाज में उनका आदर सन्मान नहीं हो सकता था इसलिए ज्योंही उन लोगों को इस बात का पता लगा कि बौद्ध होने के साथ ही साथ हमारी वर्ण-सम्बन्धी हीनता भी नष्ट हो जायगी तो वे बड़ी ख़ुशी के साथ बौद्ध हो गए। लेकिन वर्णभेद को नष्ट करने का सबसे बड़ा भारी चमत्कार तो हमें तब मालूम हुआ कि जब बुद्ध ने और बुद्ध के अनुयाइयों ने अपने धर्म के उपदेशकों को भारत से बाहर सुदूरपूर्व द्वीप समूहों में, एशिया के मध्यभाग में और यूरोप के अन्दर भेजा और वहाँ के लोगों को राजा और प्रजा सहित लाखों की तादाद में बौद्ध बना लिया। और इन बौद्धों को एक महान साम्राज्य

स्थापित करने में जरा भी कठिनाई नहीं उठानी पड़ी।

आर्य-समाज ने जिस प्रकार जात-पात को विध्वंस किया था और जात-पांत के विरुद्ध आवाज उठाई थी अगर वह उसी प्रकार वर्णों का भी नाश कर देती और 'आर्य' मात्र एक जाति बन जाती तो भारतवर्ष में जो आज उसकी वर्तमान अवस्था बौद्धकाल से बिलकुल ही भिन्न है और जहाँ पर करोड़ों मुसलमान बसे हुए हैं, जिनमें अधिकांश मुसलमानों के अत्याचार के कारण नहीं किन्तु हिन्दुओं ही के अत्याचार के कारण मुसलमान हो गये हैं और जो हिन्दू होने के लिये अब भी उत्सुक हैं, वे बड़ी संख्या में हिन्दू हो जाते। और पाश्चात्य सभ्यता संस्कार और जीवन ने हमारे अन्दर जो एक नवीनता पैदा की थी, वह एक जमीन थी, जिसमें आर्य-समाज के सिद्धान्तों का बीज अगर बोया जाता तो समस्त हिन्दू समाज में एक बड़ी भारी राष्ट्रीयता उत्पन्न हो जाती और करोड़ों मुसलमान और ईसाई भी इस राष्ट्रीयता के अन्दर मिलकर आर्य-समाज को एक बहुत प्रबल और शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बना सकते।

आर्य-समाज ठीक समय पर उदित हुआ था अगर वह वर्ण भेद के झमेले में न पड़ता तो आज उसका बड़ा भारी उदय हो जाता।

मैं फिर भी कहता हूं कि अब तक तो जो हुआ सो हुआ परन्तु अब आर्य-समाज को तत्काल ही वर्ण-व्यवस्था का

नाश कर देना चाहिये जिस प्रकार कि जाति-पाँति के नाश करने का बीड़ा उसने उठाया था। सबसे पहले तो ब्राह्मणत्व को नाश करने की आवश्यकता है। यह ब्राह्मणत्व हिन्दु समाज में एक आपत्ति की चीज़ है। यह अच्छी दिल्लगी की बात है कि मूर्ख, पाखण्डी, बदमाश, लुच्चे, लंपटी और कलङ्की चाहे भी जैसा कोई आदमी हो लेकिन अगर वह ब्राह्मण वंश में पैदा हुआ है तो वह अपने को सारे मनुष्यों से श्रेष्ठ मानेगा और कहेगा और वह किसी भी जाति के उस पुरुष को कि जिसमें सभी प्रकार के उत्तम गुण मौजूद हों, किसी भी हालत में अपने से श्रेष्ठ समझने से इन्कार करता है। मनु आदि स्मृतियों में और तात्कालिक सामाजिक विधान की पुस्तकों में ब्राह्मण के प्रति जो पक्षपात किया गया है, वह हद दर्जे का घृणास्पद है। मनुस्मृति के पहले अध्याय के ६६ श्लोक में लिखा है कि—

"प्राणी पृथ्वी पर ब्राह्मण का जन्म लेकर ही सर्व-श्रेष्ठ होता है, वह सब प्राणी और धर्म का मुखिया होता है।"

इसी के आगे के श्लोकों में लिखा है :—

"जगत में जो कुछ है ब्राह्मणता है और वह श्रेष्ठ होने के कारण सबको ग्रहण करने का अधिकारी है।"

"ब्राह्मण चाहे दान में प्राप्त अन्न खाता और वस्त्र पहिनता हो, वह सब वस्तुएँ उसी की हैं और दूसरा चाहे अपना अन्न वस्त्र खाये पहिने वह सब ब्राह्मण का है।"

इसी के ६वें अध्याय के ३२३ वें श्लोक में लिखा है :—

"युद्ध में प्राप्त किया तमाम धन, राज्य, खजाना ब्राह्मण को दान देकर राजा युद्ध में प्राण त्यागे।"

८ वें अध्याय के ३७९ श्लोक में लिखा है :—

"जिस अपराध पर औरों को प्राणदण्ड मिलना चाहिये उसी में ब्राह्मण को बध न करके मामूली दण्ड देकर छोड़ देना चाहिये।"

आठवें अध्याय के ३८० वें श्लोक में लिखा है:—

"ब्राह्मण चाहे सभी पापों में स्थित हो फिर भी उसे मारना अच्छा नहीं। उसे सब प्रकार के शारीरिक दंड रहित और सब धन सहित देश से निकाल देना चाहिए।"

ये हद दर्जे की बेईमानी की बातें हैं और जिस पुस्तक के अन्दर ऐसी बातें लिखी गई हैं उसे धर्म पुस्तक कहना या मानना हद दर्जे की दिमाग़ी गुलामी है। इसको तो जड़ मूल से नष्ट कर देना चाहिए।

यह बात सरासर झूठी है कि ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण कहलाता है। ब्राह्मण का अर्थ तो यह है कि जो यज्ञ की और अग्निहोत्र की विधियों को जाने। क्या हम इस बात पर विचार करेंगे कि क्या आज हमें ब्राह्मण की जरूरत है, मैं कहूँगा कि न तो अब है और न हमेशा होगी इसलिए ब्राह्मण-पन को सबसे पहले जड़ मूल से नष्ट कर देना चाहिए। यह बात तो सभी जानते हैं कि धार्मिक अवसरों पर, शादी-गमी में सब ही जगह ब्राह्मण जाते हैं और हिंदुओं में तो कुल्लम

खुल्ला है कि कोई भी ब्राह्मण अगंड़ बगंड़ बक जाय और चौबन्नी दक्षिण ले जाय। क्या इसी प्रकार धर्म कृत्यों के फल बेचने को धर्म कहते हैं।

मैं कहता हूं कि आर्य समाज भी इसी प्रकार की मूर्खता करता है। यद्यपि उसने जन्म की ब्राह्मणता को नष्ट कर दिया है लेकिन फिर भी वह मामूली पढ़े लिखे आदमी को पंडित जी आदि कह कर ब्राह्मणत्व को कायम रखना चाहता है। मामूली पढ़े लिखे लोग जो ठाट बाट से मन्त्र उच्चारण कर लेते हैं वे अपने को पंडित जी कहलाने में अपना गौरव समझते हैं। ऐसे हमने कई आदमी देखे हैं कि जो विवाह कर्म, अनुष्ठान आदि को अपना पेशा बनाए हुए हैं जैसा कि प्राचीन ब्राह्मणों ने बनाए हुए थे। मैं कहता हूं कि इस मूर्खता के मूल को जड़ से उखाड़ देना चाहिए। आर्य समाज को विवाह के अनुष्ठानों के लिए किराए के टट्टुओं की जरूरत नहीं। ऐसे अवसरों पर उपस्थित सज्जनों में से सर्व श्रेष्ठ पुरुष को ही इस कार्य के लिए नियुक्त करना चाहिए। उसको हरगिज़ कोई दक्षिणा नहीं देनी चाहिए जिससे कि उनको मजदूरी का लोभ पैदा हो।

केवल ब्राह्मणत्व को ही नाश करने से काम नहीं चलेगा और वर्णों का भी हमें नाश करना होगा। इसके साथ ही शूद्रता और वैश्यत्व को भी नष्ट कर देने की जरूरत है। किसी भी एक आदमी को योद्धा बनाना मेरी समझ में नहीं आता।

निकट भविष्य में जो देश में महान राष्ट्र बनने वाला है, उसके लिए तो प्रत्येक वर्ण को क्षत्रिय के गुणों को सीखना होगा और जब भी देश को जरूरत होगी राष्ट्रीय सेना तैयार करनी होगी। इसलिए देश के तमाम व्यक्तियों को आवश्यकता पड़ने पर योद्धा बनना पड़ेगा। लेकिन युद्ध हमेशा नहीं होते और जब युद्ध न हो तो योधा पंजाबी क्षत्री क्या क्या करें। आज हम देखते हैं कि लाखों की तादाद में क्षत्रिय लोग खेती करते हैं और खेती क्यारी से पशु पाल कर वाणिज्य आदि पेशा करके भी वे अपने आपको ठाकुर और राजपूत कहते हैं। ब्राह्मण, रसोई बनाते हैं पानी भरते हैं, चपरासी हैं साहूकार हैं, मुनीम हैं और अपने आपको ब्राह्मण कहते हैं। इसी प्रकार सभी जाति वाले लोग सबही प्रकार के पेशे करते हैं केवल उनकी रोटी बेटी ही एक अपनी जाति के अन्दर होती है। तो मैं यह कहता हूँ कि केवल एक रोटी बेटी ही के लिए हमें निरर्थक वर्णभेद के झगड़े में क्यों पड़ना चाहिए।

यह कहना भी मूर्खता है कि वैश्य-वृत्ति के लिए किसी खास व्यक्ति को नियत कर देना चाहिए। जब युद्ध न होगा तब योद्धा और ब्राह्मण क्या करेंगे ? क्या वे खाली बैठे २ डंड पेलेंगे ? उनके सामने भी तो कोई न कोई व्यवसाय या काम होना चाहिए। जैसे आजकल सैकड़ों राजपूत खेती करते वे अपने आपको झूंठ मूंठ क्षत्री क्यों बनाते हैं।

अब केवल एक बात विचारने को रह जाती है और जो

कि बड़ी भारी बात है। वह यह है कि आर्य समाज की सर्व-श्रेष्ठ पुस्तक वेद है और चूंकि वर्ण-व्यवस्था वैदिक की व्यवस्थी है। इसलिए कोई भी आर्य समाजी वेद के खिलाफ चूँ नहीं कर सकता। इसमें मेरा कहना यह है कि प्रथम बात तो यह है कि वर्तमान वर्ण व्यवस्था वैदिक नहीं है।

ऋग्वेद के अध्ययन से हमें पता लगता है कि वर्ण शब्द केवल आर्यों में और अनार्यों में भेद प्रकट करने के लिए दिया गया है आर्यों ही के भिन्न विभाग के अर्थ में नहीं। 'आर्य वर्ण' या दस्युवर्ण' इस प्रकार के पाठ ऋग्वेद के अन्दर आए हैं। 'शूद्र' शब्द ऋग्वेद में कहीं भी नहीं है, दस्यु' शब्द है है लेकिन वह अनार्य के लिए हैं। वैष्य शब्द भी नहीं है विष शब्द है। ब्राह्मण शब्द किसी खास जाति के अर्थ में नहीं है वह मन्त्र अनुष्ठान कराने वाले अथवा पुरोहित के यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में और दूसरे वेदों के अन्दर ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र साफ साफ नाम हमें देखने को मिलते हैं लेकिन हम नहीं देखते कि रोटी बेटी का सम्बन्ध जैसा कि आज हिन्दु समाज में जारी है और सार्य समाज में भी जारी है, वह वेद वर्णित। मैं कहता हूँ कि हमें वर्ण व्यवस्था का नामो निशान मिटा देना चाहिए। ऐसा करने से अन्य जाति और अन्य धर्म के लोग धार्मिक व्यवस्था में हमारे साथ मिल जायेंगे वे एक जाति और एक राष्ट्र के बन जायंगे। आचार और भावनाएँ जिनसे कि आत्मा पवित्र होती है और मनुष्य का व्यक्तिगत

और सामाजिक जीवन शुद्ध होता है, यह ऐसी चीज नहीं है वह ऐसी चीज नहीं है कि जो किसी खास जाति या धर्म के लिए सुरक्षित हों बल्कि उससे हर एक लाभ उठा सकता है। आर्य समाज को भी ऐसा ही करना चाहिए कि जिससे वह एक प्रबल राष्ट्र बना सके।

जैसा कि हम पहले कह आए है कि ईसाई और मुसलमानों को शुद्ध करके उन्हें क्षत्रिय करार दे दिय जाय। लेकिन उन्हें क्षत्रीय का करार देना ऐसा हास्यास्पद है मानों क्षत्रियों में कोई भेद ही न हो। क्षत्रियों में भी जब विवाह शादी के मौके आते हैं तो गोत्र वर्ण आदि के अनेकों झंझट सामने आते हैं। अगर आर्य-समाज यह दावा करता है कि ईसाई तुर्क मुसलमान अफ़गान सब आर्य-समाजी बनें तो मान लीजिए कि आर्य समाज का जो रोटी बेटी का सम्बन्ध हिन्दू समाज से होता है तो उनका कौन सा गोत्र बनाया जायगा। उनको नकली झूठ मूँठ के ब्राह्मण या क्षत्री बनाने से काम नहीं चल सकता। यह तो एक ऐसा बन्धन है कि जो आर्य समाज को संकुचित बनाता है इस लिए हमको बिलकुल वर्ण और जाति का नाश कर देना चाहिए और एक राष्ट्र हमारा बन चाहिए। तब कहीं जाकर हमारा वह बन्धन दूर होगा और बौद्धों ही की भांति तीव्र गति से आर्य समाज का प्रचार होगा।

अब दूसरी बात पर हम प्रकाश डालना चाहते हैं और इसके लिए हम बौद्धो के नाश का उदाहरण पेश करेंगे। हमने

बताया है कि बौद्ध धर्म के विस्तार का एक मात्र कारण यह था कि बुद्ध ने वर्ण व्यवस्था के झँझट को नष्ट कर दिया जिस कारण से दूसरी जाति वाले लोगों को बौद्ध बनने में कोई बाधा न रही। लेकिन बौद्धों में एक बड़ी भारी त्रुटि रही कि जिसने उनका नाश कर दिया। बुद्ध ने स्वयं घोर तपस्याएँ कीं कठिन त्याग किया वह परम वीतरागी सन्यासी बन गया सब प्रकार की इन्द्रिय-वासनाओं का उसने दमन किया। और सामुहिक रूप से उसने इन बातों का प्रचार किया कि इस प्रकार घर त्याग कर भिक्षु होकर केवल आत्मा के कल्याण की कामना करे।

संसार के मनुष्यों का इस प्रकार वीतराग हो जाना यह कभी संभव नहीं है। बुद्ध ने और बौद्ध विद्वानों ने त्याग और तप का जीवन व्यतीत करने के लिए बड़े बड़े नियम बनाए और हजारों भिक्षुओं ने उनका पालन किया लेकिन वे मनुष्य के स्वाभाविक जीवन से टक्कर खा गए। इसका परिणाम यह हुआ कि एक समय ऐसा आया कि बौद्ध सन्यासी और सन्यासिनें सबसे अधिक भ्रष्ट और सब से अधिक पतित हुईं और सबसे पहले उन्हींने ताँत्रिक मत उत्पन्न किया और भ्रष्टाचार को धार्मिक रूप दिया।

मेरा तो कहना यह है कि मनुष्य की जैसे कि पतित होना दोष है उसी प्रकार बहुत उन्नत होने की इच्छा करना भी एक

प्रकार का दोष है। बहुत उन्नत होने की इच्छा करना इसलिए दोष है कि वह नहीं निभने वाला नियम है और उससे गिरने के बाद फिर संभलना बहुत ही कठिन है। इसलिए मेरा तो यह खयाल है कि मानव समाज को माध्यम वृति ग्रहण करनी चाहिए और माध्यम वृति के अन्दर सम भाव से रहना चाहिए प्रत्येक इन्द्रिय मन और आत्मा अपने २ विषय को निहा यत धर्म संयम और विवेक से ग्रहण करे, न हीन योग हो न अति योग हो। ऐसा जीवन संसार का सबसे बड़ा सुखी और सुन्दर जीवन है। संसार को तुच्छ समझने की भावना, संसार को त्याग देने की भावनायें वैसी ही मूर्खता पूर्ण भावनाएं हैं जैसी कि संसार को सब कुछ समझने की भावना। इसीलिए चूँकि बुद्ध ने भिक्षु और भिक्षुणियों के लिए भी बहुत कड़े नियम बनाए जिनका कि पालन नहीं हो सका और बौद्धों का पतन हो गया आर्य-समाज ने भी जो आश्रम संबन्धी नियम बनाए, वे भी ऐसे ही कड़े रहे कि जिनका शुरू ही में पालन नहीं हो सका। स्वामी दयानन्द ने जब गुरुकुल खोले तब उनके नियम बड़े कड़े थे। लेकिन कोई भी गुरुकुल ऐसा नहीं कर सका और उनको अपने नियम ढीले करने पड़े। मैं तो कहूँगा कि यह तो अच्छा हुआ। और भी उत्तम होता अगर गुरुकुलों की शिक्षा प्रणाली युगधर्म के अनुकूल होती तो वहाँ से निकले हुए स्नातक केवल आर्य समाज के प्रचारक ही नहीं होते प्रत्युत समाज के एक आदर्श सद्गृहस्थ होते।

ठीक इसी तरह वानप्रस्थ और संन्यास के प्राचीन हिन्दुओं और बौद्धों के ढोंग आज कल के युग में निरर्थक और अनावश्यक हैं। केवल कपड़े रंगने से या सिर मुड़ाने से कोई लाभ नहीं हो सकता है। बिना वेष धारण किये भी मनुष्य देश और समाज की सेवा कर सकता है जैसा कि तिलक, गांधी, गोविंद रानाडे, गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, मालवीय आदि पुरुषों की तरफ दुनिया ने देखा कि ये हस्तियाँ समाज और देश के लिए कितनी कीमती हैं साबित हुई हैं और उनके त्याग और तप के सामने वे बड़े पाखंडी सिर मुड़ाने वाले भगवा कपड़ा पहनने वाले वे कल्ले दराजी करते और तर माल चीरते हैं, किसी गिनती के नहीं हैं। मैं चाहता हूँ कि आर्यसमाज में से यह आश्रमों का भी पाखंड पूर्ण विभाग उठा दिया जाय, मनुष्य अन्त तक नागरिक बना रहे, संन्यासी होने का ढोंग न करे और वह जीवन के अन्त तक समाज की सेवा और समाज के कल्याण के कार्य करता रहे। यह बात कि यदि ब्रह्मचर्य आश्रम न रहेगा तो बाल विवाह होने शुरू हो जायँगे तो मैं यह कहता हूँ कि क्य तमाम यूरोप में कहीं ब्रह्मचर्य आश्रम है आज वहाँ जितने भी विवाह होते हैं वे सब तीस या चालीस वर्ष की अवस्था के बीच में होते हैं। समाज की रीतियों को अगर प्रौढ़ बनाया जायगा तो उसमें सामूहिक दृढ़ शक्ति आप ही आप पैदा हो जायगी। स्वास्थ्य, विज्ञान, कला कौशल, अर्थशास्त्र और सामाजिक जीवन इन सबके प्रश्न को लेकर जो सामाजिक

जीवन बनाया जायगा वह सामज में दृढ़ता पैदा करेगा।

अब वह जमाना नहीं रहा कि धर्म शास्त्र की दुहाई देकर हम कहें कि बच्चों को ब्रह्मचारी रक्खो। घर बार त्याग कर सन्यासी हो जाओ। मूँड़ मुड़ा कर साधु बन जाओ इससे कोई लाभ नहीं हो सकता।

हम चाहते हैं कि हमारे मन से बाहरी बनावट का ढोंग निकल जाय। हम सच्चे मन से ऐसे समाज में संगठित हो जायँ जो युगधर्म के अनुसार हो। हमारे देश के प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बनना चाहिए। जब युद्ध की पुकार हो तो देश का बच्चा २ योद्धा का बाना पहन ले। शांति की बेला में सबको कला, कौशल उद्योग आदि का प्रचार करना चाहिए।

अब हमें जातियों के टुकड़े नहीं चाहिए, हमें एक रस, एक प्राण एक जाति बन जाना चाहिए। तभी हमारे देश का कल्याण हो सकेगा।

(१४)

जहरीली छुरी

हिन्दुओं के प्राणों का संहार जिस जहरीली छुरी ने किया है वह किसी जालिम कसाई ने उनके कलेजे में नहीं झोंकदी है प्रत्युत अपने हाथ से ही हमने इस हत्यारी छुरी को छाती में घुपा लिया है—यह छुरी बाल्य विवाह है।

बालविवाह की नीच और घिनौनी चाल ने जितनी बड़ी चोट हिन्दू जाति को पहुँचाई है उतनी किसी ने नहीं पहुँचाई। ब्रह्मचर्य की उत्तम चाल को जड़ से उखाड़ने वाला सबसे तेज और जबरदस्त कुल्हाड़ा बाल विवाह है।

'इन्सान का जानी दुश्मन, तन्दुरुस्ती को हलाहल जहर सदाचार का भारी विरोधी, बालविवाह ने जब से संसार की मुकुट हिन्दू जाति में अपना पैर बढ़ाया है तभी से चौपट कर दिया है। मुकुट की मणि मुकुट से गिरकर पैरों से कुचली जाने लगी और सबसे ज्यादा अफसोस की बात यह है कि इस प्लेग और हैजे से भी भयानक रोग को अभोग हिन्दू सदा आनन्द से स्वागत करते रहे हैं, और कर रहे हैं।

इसके भयंकर परिणाम को लिखते सचमुच लेखनी थर्राती

है। रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारी सारी इज्जत, तमाम आबरू, सारा बड़प्पन, और हमारे शिर की पगड़ी तक इस डायन प्रथा ने धूल में मिलादी है। कहाँ तक हम रोवें इसके भयंकर नतीजे को देख कर सारे शरीर में हजारों विच्छू काटने जैसा दर्द होता है। १५ वर्ष के बच्चे और ६—१० वर्ष की बालिका जिस देश में मां बाप बन कर इस महान् पद को कलंकित करें, उस देश का क्यों न सत्यानाश जाय ? पकने से पहले ही जिसके खेत को कुचल कर बर्बाद कर दिया गया है उस कमबख्त किसान की बदनसीबी का भी कुछ ठिकाना है ? जिसके फूल खिलने से पहिले ही मसल कर मोरियों में फेंक दिये हों उसके दुर्भाग्य पर शत्रु को भी दया आवेगी।

आपने क्या देखा नहीं है ? छोटे २ बच्चे दूल्हा दूल्हिन बन कर विवाह करने चले हैं। बच्चा धोती पहरना नहीं सीखा, लड़की रोकर रोटी माँगती है और वे इस नादानी की उम्र में गृहस्थ की जबरदस्त गाड़ी में अपने जालिम माँ बापों से जोत दिये जाते हैं। बड़े अभागे ही बच्चों को ऐसे जालिम माँ बाप मिलते हैं जिनकी वह खुशी उस कसाई की खुशी से किसी प्रकार कम नहीं है जो अपने सामने तड़पते जानवर को देखकर होती है।

विवाह की बात दूर रहे उनके संस्कार में भी यही विषैली स्प्रिट भरी जाती है—क्यों बेटा ! कैसी बहू लावेगा ? गोरी या काली ! बेटा यों ही तोतली वाणी से कह देता है ताती,

माँ बाप ही-ही करके हंस देते हैं बच्चा भी ताली बजा २ कर हंस कर बारंबार ताली २ पुकरता है बच्चा हंसी को समझता है हंसी की वजह को नहीं। बच्चों को खुशी ही चाहिये, जिस बात को सुनकर सभी हंसते हैं उसी बात को बार २ कहना बच्चे को अच्छा लगता है जन्म से ही प्रभाव कुसंस्कार का रहता है दीयासलाई में मसाला लगा रहता है, विवाह होते ही रगड़ने मात्र की देर है, रगड़ा लगा-फक से सारी शक्ति भस्म हो गई, जीवन की आशायें धूल में मिल गई। न तो उसे संसार का तजुर्बा है और न उसके प्रबल प्रवाह में ठहरने की शक्ति ही है और नहीं उसे भविष्य का ज्ञान ही है। हो कहाँ से उसे ऐसा करने का अवसर ही नहीं दिया गया। वह अनाथ गरीब संसार की तपती भट्टी में भस्म होने को झोंक दिया जाता है शोक ? ? ?

इसके भयानक परिणाम को क्या हमें बताना पड़ेगा? उसे कौन नहीं जानता ? सारा भारत इस आग में तप रहा है। तमाम समुदाय में जो यह आग भड़क रही है-दिन रात नोन तेल की चिन्ता में जो यह अमूल्य जीवन जर्जर हो रहा है हमारा जीवन जो विषमय हो रहा है—सदा मौत की भीख जो हम माँगते हैं—इन सब का कारण क्या है? यह दुख कहाँ से हमारे ऊपर आया है? इन सबका उत्तर है बाल-विवाह।

लड़के लड़कियों के बालविवाह, विषयभोग की अधिकता, और व्यभिचार की प्रवृत्ति से मनुष्य में वीर्य की कमी और

निर्बलता आगई है, जिससे एक तो गर्भस्थिति ही कम होती है दूसरे गर्भ रह भी जाय तो क्षीण हो जाते हैं, अथवा संतान होकर तुरन्त मर जाती हैं जो भाग्य से बच भी रहे तो यह दशा है कि अत्यन्त निर्बल निस्तेज, स्वर फटे बाँस के जैसा, सूरत बन्दर की, प्रमेह की बहुतायत, स्मरण शक्ति का नाश, कम अक्ल, आँखों के अंधे, चश्मों के खरीदार-सदा के रोगी, वैद्य डाक्टरों के यार, चुपड़ी रोटी खावें तो खट्टी डकार, पाव भर दूध पीवें तो दस्तों की भरमार, किसी को बादी का विकार, मुटापे की भरमार-थोंद के भार से चलना दुस्वार। पेट लटकना, घुटने पकड़ कर उठना, बोलने में हांपना धमकी से काँपना, किसी का पेट पटक रहा रहा है, कमर कमान हो रही है, गालों में गड्ढे आँख भीतर बैठी, कोस भर मार्ग चलना महाभारत की लड़ाई और नीचे से कोठे पर चढ़ना पहाड़ की चढ़ाई है, यह जवानी की दशा है ? यह हमारी खिलती फुलवाड़ी का नमूना है। बुढ़ापे की दशा को तो आप समझ ही लें-बुढ़ापे का स्यापा अब जवानी में ही भुगत जाता है, अब ३५ वर्ष का पुरुष बूढ़ा कहाता है। आप ही कहिये ऐसे स्त्री पुरुषों के वंश कैसे चलेंगे ? और चलेंगे तो कै दिन जीवेंगे ? मित्रो ! इसी से पीढ़ी दर पीढ़ी सन्तान कम होती जा रही है।

बचपन ही से कामकला को भड़का कर जिनकी मनो-वृत्ति गन्दी करदी गई हैं, वे अपने बच्चों के रुधिर में इस विषैले प्रभाव को उतार देते हैं, जिससे उनकी सन्तान बचपन ही से विषयी लम्पट और अधर्मी हो जाती है उनकी जड़

में उत्पन्न होते ही कीड़ा लग जाता है और जब वे फलते फूलते, अपनी सुगन्ध को संसार में फैलाते, अपने प्रताप से भूमण्डल को कंपाते, उससे प्रथम ही मुर्झा कर संसार से उठ जाते हैं। उनकी हार्दिक, स्नायविक, मानसिक दुर्बलता उन्हें अधम और नीच ही बनाये रखती है।

हमारे शरीर में उत्साह नहीं है बल नहीं है साहस वीरता नहीं है। और दुनिया के किसी भी फल को भोगने में क्षमता नहीं है। ये सब संकट बालविवाह द्वारा ब्रह्मचर्य का नाश कर के ही क्या हमने मोल नहीं लिये हैं ?

हमारी नस्ल बर्बाद हो गई, जिन्दगी घट गई- तन्दुरुस्ती मिट्टी में मिल गई, रह गई हड्डी की ठठरी, रह गई अधमरी देह। इसका कारण क्या है ? वही तुम्हारे जालिम मा बापों का प्यार। और वही बहू देखने की लालसा—!!!

पन्द्रह सोलह वर्ष की उम्र हुई है, बच्चा स्कूल में ऊंचे दर्जे में पहुँचा है, दिमाग़ी मिहनत का ज़ोर है—उधर गौना होकर भी आगया। बच्चे की जान पर बलैया लेने वाली उसकी मा आंचल पसार कर दांत निकाल कर गिड़ गिड़ा कर कहती है। हे विश्वनाथ बाबा ! हे काली हे भवानी ! चौराहे की चामुण्डा ! अब तो पोते का मुंह दिखा दे। यहीं नहीं उसकी तैयारी भी होने लगीं-दोनों जोड़ी एक कोठरी के अन्दर बन्द की गई। इधर दिमाग़ी मिहनत, पढ़ने का जोर उधर खाने की तंगी, घी दूध का नाम नहीं, घधर पोते बनाने

की लालसा इन सब में बच्चा पिस मरा। हाड़ की ठठरी रह गई, मा कहती है अजी देखो बच्चे को क्या हो गया है ? पीला पड़ता जाता है किसी सैयद का छाया तो नहीं पड़ गया है ? किसी शाह साहेब को ही दिखलाओ ?

बाप देवता बोल उठे पढ़ने में बड़ी मिहनत है, अब हम स्कूल न भेजेंगे बहुत पढ़ गया है इतना तो हमारे कोई पढ़ा भी नहीं था। बस सब हो गया तालीम का द्वार बन्द होगया पर सत्यानाश का द्वार सोलह आना खुल गया, रोग भी बढ़ता ही गया। अन्त में जल्दी ही राम २ सत्य बुल गई। जब कली खिलने के दिन आये थे जब उसकी सुगन्ध फैलनी थी हाय उससे पहले ही कुचल डाला गया मसल डाला गया सो भी प्यार करने वालों के हाथों से, उस पर न्यौछावर होने वालों के हाथों से, तब वही मा बाप छाती पीट कर रोते हैं हाय बेटा ! अन्धों की लकड़ी छिन गई, तब उनका रोना आकाश फाड़ता है, वे अभागे नहीं जानते कि उन्हीं के नापाक हाथ उन मासूम और बे गुनाह गच्चों के खून मे रंगे गये हैं उन्हीं ने अपने वंश का नाश है, उन्हीं ने अपने पैर में कुल्हाड़ी मारी है, कोई शक्ति है जो उनके दामन से उस खून के दाग को छुड़ा सके ?

अभागो ? क्या अब भी चेत न होगा ? जालिमो ! गजब है ! घर में अपना ही खून करते तुम्हें कैसे बन आता है ? जिनके वंश में तुम पैदा हुए हो जिनका खून तुम्हारे शरीर में बह रहा है। उनकी वाणी तुम सुनते उनकी आज्ञाओं को तुम

पालन करते तो तुम भी वैसे ही रहे होते, तुम्हारा सर्वनाश तुम्हारे ही सामने न होता। तुम्हारा जीवन तुम्हारे देखते ही देखते विषमय न बनता! और जिन फूलों की सुगन्ध ही तुम्हारी बड़ी खुशी थी वे फूल वे तुम्हारे हृदय के रत्न, वे तुम्हारे आँखों के तारे, तुम्हारे प्यारे बच्चे, यों अवाज में काल के गाल में न जाते। तुम महा अभागे रहे, हाँ हजार बार अभागे हो जो अपने रत्न को अपने सर्वस्व को अपनी सम्पत्ति को, या पैरा से कुचल कर फेंक दे उससे अधिक अभागा और कौन हो सकता है? उस अभागे की मूर्खता पर एक बार नहीं लाख लाख धिक्कार है।

भाइयो! तुम्हें अपनी दया का बड़ा अभिमान है, पर सच तो यों है कि तुम्हारी बराबर संसार में कोई कसाई और क्रूर नहीं है। छोटे २ भुनगे, चींटी, मकोड़े, कौवे, कुत्ते, आदि पशुओं के लिए तुम्हारे पास दया का भंडार भर रहा है। पर अपनी सन्तानों पर यह जुल्म कि उनकी सारी आशाओं को कुचल कर, उनकी उठती जवानी पर कुछ भी तरस न खाकर उन्हें हाय ऐसी बुरी मौत मार रहे हो कि कसाई गाय को भी न मारेगा। कसाई गाय को एक ही हाथ में साफ़ कर देता है वह बेचारी दुख से छूट जाती है पर तुम जो एक वष की दूध पीती कन्याओं को विधवा बनाकर पापों की नदी बहा रहे हो उन्हें रोम २ में विष पैदा करने वाले दुःख सागर में धकेल कर जीते जी दुखाग्नि में डाल कर जो भून रहे हो, उनके तड़पने को देखकर जो पुण्य की उत्पत्ति समझ रहे हो इतना होने पर

तुम्हारा पत्थर का कलेजा नहीं पिघलता ? तुम्हारी छाती पर सांप नहीं लोट जाता ? ये जो लाखों विधवायें तुम्हारी छाती पर मूंग दल रही हैं, कोई चुपचाप सर्द आह भर कर भारत को रसातल पहुंचा रही हैं। कोई कहार, धीवर, कसाई, के साथ मुँह काला करके हिन्दू वंश की नाक कटा रही हैं फिर भी जो तुम ऋषि संतान कहलाने की इच्छा रखते हो। अब भी जो तुम्हें अपने रक्त और वंश का, अभिमान है, तो शर्म है और लाख २ शर्म है।

अपने बुजुर्गों को तो देखो ! जो लोग दीन दुखियों का आर्त्तनाद सुन कर भोजन और भजन छोड़ देते थे उस दुखी जन का दुःख दूर करके जल पान करते थे या जान खो देते थे। हाय ! उनकी आज संतान ऐसी अधर्मी हो गई करोड़ों बिधवाओं की बिलबिलाहट और हाहाकार सुन कर भी उन्हें सुख की नींद आती है ? जिनकी छाती पर सिला रक्खी रह—आठों पहर जवान विधवा कन्या चुप चाप कलेजे का खून पिया करे—उसकी आत्मा फूट २ कर रोती रहे—और इन धर्मधुरियों के हलक़ में मजे से छत्तीसों व्यञ्जन सरक जाँय ! पहचानने से प्रथम ही जिस का एक मात्र जीवन का आधार जगत से उठ जाय—वह ग़रीब अभागिनी तुम्हारे पाप से ही इस अंधेरी दुख भरी दुनियां में चक्की पीस २ कर कुत्ते भी न खाँय, ऐसे सूखे टुकड़े खा कर दिन काटे ? सूअर भी न रहें ऐसी सड़ी मैली कोठरी से रहे ? बीमार पड़ने पर बिना सहाय भूखी प्यासी तड़फ २ कर मर

जाय पर तुम्हारे इत्र फुलेल और लकझक पोशाक में कुछ भी कसर न रहे ? उनके लिए तुम्हारे हृदय में राई रत्ती भर भी सहानुभूति न रही ? अधर्मियों ! मुसलमान ईसाई और कसाई भी जिन पर तरस खाते हैं पत्थर हृदय जल्लाद को भी जिन पर करुणा हो जाती है उन दुखियाओं पर इन दयालुओं (दया के अभिमानियों) को तनिक भी दया नहीं आती । जो लोग अपने को अहिंसा धर्मधारी समझ रहे जो लोग दयावान् ऋषि मुनियों की सन्तान होने का अभिमान रखते हैं, उन्हीं की दया का यह दृश्य है ? यह उनकी सभ्यता का नमूना है ? क्या यह सब घोर पाप नहीं है ? क्या ऐसे अत्याचार किसी दूसरी जाति में बता सकते हो ? कसाई को सबसे अधिक क्रूर, निर्दई कह कर तुम घृणा करते हो, गाली देते हो, और उसका मुँह नहीं देखना चाहते, पर वे तुम से अधिक घृणित नहीं हैं ? बिना सींगों की गायों पर, अपनी बहन बेटियों पर—उनकी छुरी कदापि नहीं उठती हिंसक पशु, पक्षी, सिंह, भेड़िया आदि भी स्त्री बच्चों पर दया करते हैं, स्त्रियों को सब ही ने अबाध्य माना है जंगली जाति भी स्त्री को नहीं सताती, पर हिंदू जाति के सुपूत उन्हीं का गला घोट कर अपने लिए स्वर्ग का द्वार खोल रहे हैं । मनु कहते हैं—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।

जिस जाति में स्त्रियां शोकित रहती हैं वह कुछ शीघ्र ही

नष्ट हो जाता है हमें आश्चर्य है कि इतने घोर पाप करने पर भी हिन्दू जाति अब तक कैसे रह गई—वह क्यों न डूब गई—क्यों न गजब का पहाड़ उस पर टूट पड़ा ? अब यह पाप अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँच चुके हैं इसके जहरीले फल फलने लगे हैं देखिए—

(१) लाखों घराने निर्वंश हो गये–बड़े २ घरों में ताले ठुक गये।

(२) बहुत से स्त्री पुरुष कंगाली के कारण धर्म से पतित होकर ईसाई मुसलमान हो गये।

(३) व्यभिचार के कारण भी लाखों स्त्री पुरुष हिंदू-जाति से टपक २ कर गिर रहे हैं।

(४) बिरादरी के पंचों के अनुचित वर्ताव से सताये हुए कितने ही स्त्री पुरुष धर्म में लात मार कर विरोधी हो बैठे हैं, क्योंकि आजकल के चौधरी पँच थोड़ी २ बातों पर जात से निकाल फैंकने में ही बहादुरी समझते हैं पुचकार कर सुधारना तो सीखे ही नहीं।

(५) अनाथ बालक बालिकाओं का निरादर होने से वे भी भूखे प्यासे इसाई मुसलमानों की शरण में जाते हैं !

(६) दहेज की महाभयंकर कुरीति से सताई हुई ३०।३० वर्ष की क्वारी रहने वाली कन्याओं में से बहुत सी लड़कियाँ कुसंग बश या मन के उद्वेग से बाहर भाग जाती हैं।

(७) विधवाओं की खेप की खेप हिन्दू जाति की छाती पर सिर पटक रही है जरा छाती कड़ी करके सुनिये।

सन् १९११ की मर्दुम शुमारी के अनुसार विधवाओं की संख्या ।

उम्र विधवाओं की	हिन्दू विधवा	आर्य्य विधवा	जैन विधवा	बाकी सब जाति की	भारत की सब विधवाओं का जोड़
१ वर्ष से कम	८६६	०	१५	१३३	१०१४
१ ,, ,, २ तक	७५५	०	५	९६	८५६
२ वर्ष से ३ वर्ष तक	१५६४	२	१७	२२४	१८०७
३ ,, ,, ४ ,, ,,	३९८७	४	२०	७४२	४७१३
४ ,, ,, ५ ,, ,,	७६०३	०	३५	१६३५	९२७३
जोड़ पांच साल तक की	१४७७५	६	[illegible]	२८२०	१७७०३

पांच से १० वर्ष तक की	७७५८५	२२	२६१	१६३९२	९४२७०
१० से १५ तक	१८१५०७	७४	९०६	४०५५५	२२३०४२
१५ ,, २० ,,	३६२९६६	२४३	२७०६	१००९१९	४६६८२४
१० ,, २५ ,,	७०२०१३	५०२	७३४४	१९१८९५	९०१७५४
२५ ,, ३० ,,	१०७१८४५	५८८	११३१२	३०५८९०	१३८९६३५
३० ,, ३५ ,,	१६७१६०२	८०१	१६०४९	४७४१३७	२०८२४०६
३५ ,, ४० ,,	१५८८००९	७९३	१३७६७	४७९८४३	२०८२४०६
४० ,, ४५ ,,	२८५९३४६	१४०२	२३२६७	८४८९५९	३७३१९७४
४५ ,, ५० ,,	१८२४३३६	१८६७	१३५४९	५६९२१२	२४०८१२४
५० ,, ५५ ,,	३२४४९४३	१८०६	२४२८३	१०१७६५६	४२८२६८८

६० ,, ६५ ,,	१२२५०६५	७५६	८६१७	३८७००६	१६२१५०४
६५ ,, ७० ,,	२८४३६५६	१४६१	१८१६१	६१६५३५	३६७८८४३
७० ,, ७५ ,,	६८७६५७	४०७	४६५२	२२७५७२	९२०९२८२
जिसकी उम्र न मालूम	१६६३७२७ ५६	१०१३ ०	४२४७ ०	६६५५८८ २६	२३३४५१५ ४५
कुल जोड़	२००१६०५१	१०८४५	१५३२६७	६२३८०६६	२६४२१२६२

अब आप देखें कि आप की छाती पर जो छुरी है, वह कितनी जहरीली है। जब वृक्ष छोटा होता है तो जरा से हवा के झोंके से या जरा सी धूप से मुर्झा जाता है, परन्तु ज्यों २ बढ़ता जाता है दृढ़ तथा स्थायी बनता जाता है। बच्चों की भी वही दशा है! छोटी उम्र के बच्चों पर जरा भी की सर्दी गर्मी का भरपूर असर होता है और वे रोगी हो कर प्रायः मर जाते हैं, ज्यों २ बड़े होते जाते हैं उनके रग पुट्ठे दृढ़ होते जाते हैं उन के शरीर में सहनशक्ति का अभ्यास हो जाता है, और वे रोग तथा उसके प्रबल धक्के को शहन कर सकने योग्य हो जाते हैं। यही कारण है जो इतनी बड़ी तादाद बाल विधवाओं की दीख पड़ती—इस सब पाप की जड़ बाल्यविवाह है।

इन सब बातों को सुन समझ कर भी जो तुम बालविवाह की सत्यानाशी प्रथा के पक्ष पाती रहे तो हम कहेंगे कि साँप को गले लटकाये फिरते हो पल्ले में आग बाँध कर रुई के गोदाम में घुसते हो। सरासर जिस प्रथा ने तुम्हें दीन दुनियाँ से निकम्मा करदिया है, उसे हलाहल से भी अधिक भयानक जान कर भी जो तुम आँख मींच कर उसी लकीर के फकीर बने रहो तो निस्सन्देह तुम्हारे रक्त से, तुम्हारे रग २ से मनुष्यत्व निकल गया है। और तुम मनुष्य नहीं रहे हो।